

प्रकाशक—

विश्व साहित्य ग्रन्थमाला  
हस्पताल रोड, लाहौर ।

मुद्रक—

ला० राम मेजा कपूर

मालिक

लाहौर आर्ट प्रेस

१६, अनारलकी

लाहौर ।

# विषय-सूची

कहानी		पृष्ठ
१. मंत्र	... ..	६
२. मुक्ति-मार्ग	... ..	३१
३. महातीर्थ	... ..	४६
४. रानी सारन्या	... ..	६७
५. सती	. ...	६४
६. क्षमा	.. ...	११३
७. पञ्च-परमेश्वर	.. ...	१२६
८. प्रायश्चित्त		१४१
९. शतरज के खिलाड़ी		१५६
१०. दो वैलों की कथा		१८८
११. सृजन भगन		२०५

## दो श्रेष्ठ कहानी संग्रह

मय का राज्य १)

तथा

अमावस्य २॥)

लेखक—श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

“श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार में जीवित कल्पना शक्ति और विशाल सहानुभूति की भावना है। उनकी जैली स्वाभाविक है, वह कहीं भी बँध कर नहीं चलती। हमें विश्वास है कि पाठक उनकी कहानियों को अत्यधिक पसन्द करेंगे।”—लीडर (अलाहाबाद)

“श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार में कहानी लिखने की असाधारण प्रणिभा है। उनकी कल्पना उपजाऊ है, भाषा में जीवन है।”

—ट्रिव्यून, (लाहौर)

“हिन्दी-जगत चन्द्रगुप्त जी पर नाज कर सकता है और वस्तुतः वह हिन्दी जगत के लिए गौरव है।”

—विशाल भारत (कलकत्ता)

‘चन्द्रगुप्त जी की कल्पना ऊँचा है भाषा में भाव है, चित्रण म रंग है, कहने में ढग है।’

—हम (बनारस)

‘चन्द्रगुप्त जी से हिन्दी को बहुत आशा है।’

—‘सरस्वती’ अलाहाबाद)

“चन्द्रगुप्त जी ने एक जगह लिखा है—‘मुझे विश्वास है कि पाठक मेरी इन कहानियों को अवश्य पसन्द करेंगे।’ इस अभिमान के वह पूरे अधिकारी हैं।”

—विश्वमित्र (कलकत्ता)

“हिन्दी के आठ-दस सर्वोच्च कोटि के कहानी-लेखकों में चन्द्रगुप्त जी का प्रमुख स्थान है।”

—चित्रपट (दिल्ली)

## भूमिका

लेखक तो हमेशा यही चाहता है कि उसकी सभी रचनाएँ सुन्दर हों, पर ऐसा होता नहीं। अधिकांश रचनाएँ तो यत्न करने पर भी साधारण होकर रह जाती हैं। अच्छे-से-अच्छे लेखकों की रचनाओं में भी थोड़ी-सी चीजें अच्छी निकलती हैं। फिर उनमें भी भिन्न-भिन्न रुचि की चीजें होती हैं और पाठक अपनी रुचि की चीजों को छाँट लेता है और उन्हीं का आदर करता है। हरेक लेखक की हरेक चीज, हरेक आदमी को पसन्द आए, ऐसा बहुत कम देखने में आता है।

मेरी प्रकाशित कहानियों की संख्या ३०० के लगभग हो गई है। उनके कई संग्रह छप गए हैं, लेकिन आजकल किसके पास इतना समय है कि उनकी सभी कहानियों को पढ़ सके। अगर हम हरेक लेखक की हरेक चीज पढ़ना चाहें, तो शायद दस-पाँच लेखकों में ही हमारी जिन्दगी खत्म हो जाय। इसलिए हमारे मित्रों का बहुत दिना संग्रह था। मैं अपना कोई ऐसा संग्रह निकालूँ जिसमें पाठक को मेरी कृतियाँ के मुख्य निधारित करने में सहायता हो। जिसे मेरी रचनाएँ के समूहों में बाँटी जा सकें। जिसे पढ़ कर लोग जीवन के विषय में मेरी धारणाओं से परिचित हो सकें। यह संग्रह इसी उद्देश्य से किया गया है। इसमें मैंने उन्हीं कहानियों का संग्रह किया है जिन्हें मैं खुद पसन्द करता हूँ और जिन्हें अन्य-भिन्न रुचि के आलोचकों ने भी पसन्द किया है।

कहानी सदैव से जीवन का एक विशेष अंग रही है। हर एक बालक को अपने बचपन की वह कहानियाँ याद होंगी, जो उसने अपनी माता या बहन से सुनी थीं। कहानियाँ सुनने को वह कितना लालायित रहता था, कहानी शुरू होते ही वह किस तरह सब कुछ भूलकर सुनने में तन्मय हो जाता था, कितने और चिल्लियों की कहानियाँ सुनकर वह कितना प्रसन्न होता था—इसे शायद वह कभी नहीं भूल सकता। बालजीवन की मधुर स्मृतियों में कहानी शायद सबसे मधुर है। वह खिलौने और मिठाइयाँ और तमांगे सब भूल गए, पर वह कहानियाँ अभी तक याद हैं और उन्हीं कहानियों को आज उसके मुँह से उसके बालक उनी हर्ष और उत्सुकता से सुनते होंगे। मनुष्य-जीवन की सबसे बड़ी लालसा यही है कि वह कहानी बन जाय और उसकी कीर्ति हरेक जवान पर हो।

कहानियों का जन्म तो उसी समय से हुआ, जब आदमी ने बोलना सीखा; लेकिन प्राचीन कथा-साहित्य का हमें जो कुछ ज्ञान है, वह 'कथा सरित-सागर', 'ईसप की कहानियाँ' और 'अलिफ-लैला' आदि पुस्तकों से हुआ है। यह उस समय के साहित्य के उज्ज्वल रत्न हैं। उनका मुख्य लक्षण उनका कथा-वैचित्र्य था। मानव-हृदय को वैचित्र्य में सदैव प्रेम रहा है। अनोखी घटनाओं और प्रसंगों को सुनकर हम अपने बाप-दादों की भाँति ही आज भी प्रसन्न होते हैं। हमारा खयाल है कि जन-रुचि जितनी आसानी अलिफलैला की कथाओं का आनन्द उठाता है, उतनी आसानी नवीन उपन्यासों का आनन्द नहीं उठा सकती और अगर टाल्सटाय के कथनानुसार जनप्रियता ही कला का आदर्श

मान लिया जाय, तो अलिफ़लैला के सामने स्वयं टाल्सटाय के 'वार ऐड पीस' और लूगो के 'ला मिजरेबल' की कोई गिनती नहीं। इस सिद्धान्त के अनुसार हमारी राग रागिनियाँ, हमारी सुन्दर चित्रकारियाँ और कला के अनेक रूप, जिन पर मानव-जाति को गर्व है, कला के क्षेत्र से बाहर हो जायेंगे। जनरुचि परज और विहाग की अपेक्षा विरहे और दादरे को ज्यादा पसन्द करती है। विरहों और ग्राम-गीतों में बहुधा बड़े ऊँचे दरजे की कविता होती है, फिर भी यह कहना असत्य नहीं है कि विद्वानों और आचार्यों ने कला के विकास के लिये जो मर्यादाएँ बना दी हैं, उनसे कला का रूप अधिक सुन्दर और संयत हो गया है। प्रकृति में जो कला है, वह प्रकृति की है, मनुष्य की नहीं। मनुष्य को तो वही कला मोहित करती है, जिस पर मनुष्य के आत्मा की छाप हो जो गीली मिट्टी की भाँति मानवी हृदय के साँचे में पड़कर संस्कृत हो गई हो। प्रकृति का सौन्दर्य हमें अपने विस्तार और वैभव में पराभूत कर देता है। उनमें हमें आध्यात्मिक उल्लास मिलता है पर वही नया जब मनुष्य की नृति का आरगो और मनोमन वा से रचित होकर हमारे सामने आता है, तो वह जैसे हमारा अपना हो जाता है। उसमें हमें आत्मीयता का संदेश मिलता है।

लेकिन भोजन जहाँ धोड़े से मन के से अधिक रुचिकर हो जाता है वहाँ यह भी आवश्यक है कि मसाले मात्रा से बढन न पावे। जिस तरह मसाला के बहुल्य से भोजन का स्वाद और उपयोगिता कम हो जाती है। उन्ही भाति साहित्य भी अलंकारों के



देखना चाहते हैं कि किन मनोभावों से प्रेरित होकर उसने यह काम किया, अतएव मानसिक द्वन्द्व वर्तमान उपन्यास या गल्प का खास अंग है।

प्राचीन कलाओं में लेखक बिल्कुल नैपथ्य में छिपा रहता था। हम उसके विषय में उतना ही जानते थे, जितना वह अपने को अपने पात्रों के मुख से व्यक्त करता था। जीवन पर उसके क्या विचार हैं, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उसके मनोभावों में क्या परिवर्तन होते हैं, इनका हमें कुछ पता न चलता था, लेकिन आजकल उपन्यासों में हमें लेखक के दृष्टि-कोण का भी स्थल-स्थल पर परिचय मिलता रहता है। हम उसके मनोगत विचारों और भावों द्वारा उसका रूप देखते रहते हैं और ये भाव जिनने व्यापक और गहरे अनुभवपूर्ण होते हैं उनकी ही लेखक के प्रति हमारे मन में श्रद्धा उत्पन्न होती है। यों कहना चाहिये कि वर्तमान आख्यायिका या उपन्यास का आधार ही मनोवेत्तन है घटनाएँ और पात्र तो वही मनोवेत्तनिक सत्य को स्थिर करने के निमित्त ही लागू किये हैं। उनके द्वारा न घटित हुए गाना है उदाहरणार्थ हम सप्रति न जानते हैं कि मनोवेत्तनिक सत्य को स्थिर करने के निमित्त ही पात्रों को बनाया गया है। यों कहना चाहिये कि वर्तमान आख्यायिका या उपन्यास का आधार ही मनोवेत्तनिक सत्य है। घटनाएँ और पात्र तो वही मनोवेत्तनिक सत्य को स्थिर करने के निमित्त ही लागू किये हैं। उनके द्वारा न घटित हुए गाना है उदाहरणार्थ हम सप्रति न जानते हैं कि मनोवेत्तनिक सत्य को स्थिर करने के निमित्त ही पात्रों को बनाया गया है। यों कहना चाहिये कि वर्तमान आख्यायिका या उपन्यास का आधार ही मनोवेत्तनिक सत्य है।

यों कहना चाहिये कि वर्तमान आख्यायिका या उपन्यास का आधार ही मनोवेत्तनिक सत्य है। घटनाएँ और पात्र तो वही मनोवेत्तनिक सत्य को स्थिर करने के निमित्त ही लागू किये हैं। उनके द्वारा न घटित हुए गाना है उदाहरणार्थ हम सप्रति न जानते हैं कि मनोवेत्तनिक सत्य को स्थिर करने के निमित्त ही पात्रों को बनाया गया है। यों कहना चाहिये कि वर्तमान आख्यायिका या उपन्यास का आधार ही मनोवेत्तनिक सत्य है।





हमारी वह चुधा तो नहीं मिटती, जो इच्छा-पूर्ण भोजन चाहती है, पर फलों और मिठाइयों की जो चुधा हमें सदैव बनी रहती है, वह अवश्य कहानियों से तृप्त हो जाती है। हमारा खयाल है कि कहानियों ने अपने सार्वभौम आकर्षण के कारण संसार के प्राणियों को एक दूसरे से जितना निरुद कर दिया है, उनमें जो एकात्मभाव उत्पन्न कर दिया है, उनका और किसी चीज ने नहीं किया। हम आस्ट्रेलिया का गेहूँ खाकर, चीन की चाय पीकर, अमेरिका की मोटरों पर बैठ कर भी उनको उत्पन्न करने वाले प्राणियों से बिल्कुल अपरिचित रहते हैं; लेकिन मोपासां, अनाटोल फ्रांस, चेखव और टाल्सटाय की कहानियाँ पढ़ कर हमने फ्रांस और रूस से आत्मिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। हमारे परिचय का क्षेत्र सागरों और द्वीपों और पहाड़ों को लाँघता हुआ फ्रांस और रूस तक विस्तृत हो गया है। हम वहाँ भी अपनी ही आत्मा का प्रकाश देखने लगते हैं। वहाँ के किसान और मजदूर और विद्यार्थी हमें ऐसे लगते हैं, मानो उनसे हमारा घनिष्ठ परिचय हो।

हिन्दी में २०-२५ साल पहले गल्पों की कोई चर्चा नहीं थी। कभी-कभी बैंगला या अँगरेजी कहानियों के अनुवाद छप जाते थे। आज कोई ऐसा पत्र नहीं निम्न दो-चार कहानियाँ प्रतिमान न छपती हो। कहानियों का अच्छा अच्छा संग्रह निकलत जा रहे हैं। अभी बहुत दिन नहीं गए कि कहानियों का पढ़ना मनोरंजन का दुरुपयोग समझा जाता था। बचपन में हम कभी कोई किताब पढ़ते पढ़ते लिपि जान लेते थे तो कहीं डाँट पड़ती थी। यह खयाल किया जाता था कि किस्सों से चरित्र भ्रष्ट हो जाता है और उन 'फिसाना-अजायब' और 'शुक्कहत्तरी' और 'नोना-मैना' के दिनों



## मन्त्र

१

सन्ध्या का समय था। डाक्टर चट्टा गीन्फ खेलने से तैयार  
हो रहे थे। मातर द्वार पर भासन खड़ी थी कि वो सफ़ार एक डोली  
सबसे पहले दिखाई पड़े। डोली पर पीछे पर बूढ़ा लाठा रखता  
हला खाना। डोली का पहलवा बच्चा भासन पर रख रक्कड़  
है न धीरे धीरे वो दर द्वार पर खड़ा हो कर लो भास। ऐसी  
गाफ़्त खराबी जमान पर मेरे खराब। वो लो भास। वो खड़ा हो  
हो न चले। डाक्टर मातर की भासन से भासन खड़े उठ कर लो  
सब कुछ खाने। लो भासन न हूँ।

पूछे न हाथ जोड़ पर कहें। हज़ूर वह। लो भास। लो  
लो लो भास। कहें दिन स।

डाक्टर साहब ने सिगार जला कर कहा—कल सवेरे आओ, कल सवेरे; हम इस वक्त मरीजों को नहीं देखते ।

बूढ़े ने घुटने टेककर जमीन पर सिर रख दिया और बोला—  
दुहाई है सरकार की, लडका मर जायगा । हज़ूर, चार दिन  
आँखे नहीं . .

डाक्टर चड्ढा ने कलाई पर नजर डाली । केवल १० मिनट  
समय और बाकी था । गोल्फ-स्टिक खूँटी से उतारते हुए बोले—  
कल सवेरे आओ, कल सवेरे, यह हमारे खेलने का समय है ।

बूढ़े ने पगड़ी उतार कर चौखट पर रख दी और रोऊ  
बोला—हज़ूर एक निगाह देख लें । बस एक निगाह ! लडका ह  
से चला जायगा हज़ूर, सात लडकों में यही एक बच रहा है  
हज़ूर, हम दोनों आदमी रो-रोकर मर जायेंगे सरकार ! आप  
बढ़ती हा, दीनबन्धु !

एक उजड़ बहानी यहाँ प्रायः रोज़ ही आया करते थे  
डाक्टर साहब उनके स्वभाव से गूढ़ परिचित थे । कोई कि  
ही कह कह, पर वे अपनी ही रट लगात जायेंगे । किसी  
मुनग नही । और गाँवक उठाड़े और बाहर निकल कर मोटर  
तरफ़ चले । बूढ़ा यह कहना हुआ उनके पीछे बाँडा मर  
बड़ा बरस हागा हज़ूर क्या सोचिये, बड़ा गीन दुखी हूँ, मसा  
काँठ और नही हूँ । अबु गाँ

मगर डाक्टर साहब ने उसकी आँखें मुँह करकर देखा वह  
नहीं मोटर पर बैठकर चले कल सवेरे आना ।

मोटर चली गई। बूढ़ा कई मिनट तक मूर्ति की भाँति निश्चल खड़ा रहा। संसार में ऐसे मनुष्य भी होते हैं, जो अपने आमोद-प्रमोद के आगे किसी की जान की भी परवा नहीं करते, शायद इसका उसे अब भी विश्वास न आता था। सभ्य-संसार इतना निर्मम, इतना कठोर है, इसका ऐसा मर्मभेदी अनुभव उसे अब तक न हुआ था। वह उन पुराने जमाने के जीवों में था, जो लगी हुई आग को घुमाने, मुँह को कन्धा देने, किसी के छप्पर को उठाने और किसी कलह को शान्त करने के लिये सदैव तैयार रहते थे। जब तक बूढ़े को मोटर दिखाई दी, वह खड़ा टकटकी लगाये उस ओर ताकता रहा। शायद उसे अब भी डाक्टर साहब के लौट आने की आशा थी। फिर उसने कहाँ से डोली उठाने को कहा। डोली जिधर से आई थी, उधर ही चली गई। चारों ओर से निराश होकर वह डाक्टर चड्ढा के पास आया था। इनकी बड़ी तारीफ़ मुनी थी। यहाँ से निराश होकर फिर वह किमी दूसरे डाक्टर के पास न गया। किस्मत ठोक ली।

उनी रात को उसका हैमना-खेलना मान माल का बालक अपनी बाल-लीला समाप्त करके इस संसार में सिधार गया। बूढ़े भा वष के जीवन का यही एक आधार था। इसी का मुँह दग्वकर जीत ध। इस दीपक के बुझने ही जीवन की अँधेरी रात भाँय भाँय करना लगी। बूढ़ापे की विशाल समना दृष्टे हुए हृदय से निकल कर उस अन्धकार में आर्त-स्वर से रोने लगी।

के पास कोई अच्छी जड़ी है, फिर उसे चैन न आता था । उसे लेकर ही छोड़ता था । यही व्यसन था । इस पर हजारों रुपये फूँक चुका था । मृणालिनी कई बार आ चुकी थी; पर कभी नाँवों के देखने के लिये इतनी उत्सुक न हुई थी । कह नहीं सकते, आज उसकी उत्सुकता सचमुच जाग गई थी, या वह कैलास पर अपने अधिकार का प्रदर्शन करना चाहती थी; पर उसका आग्रह बेमौका था । उस कोठरी में कितनी भीड़ लग जायेगी, भीड़ को देखकर साँप कितने चौकेंगे और गत के समय उन्हें छेड़ा जला कितना बुरा लगेगा, इन बातों का उसे जरा भी ध्यान न आया ।

कैलाम ने कहा—नहीं, कल जहर दिखा दूँगा । इस बड़े अच्छी तरह दिखा भी तो न सकूँगा कमरे में निल रखने की जगह भी न मिलेगी ।

एक मन्त्राशय न छेड़ कर कहा—दिखा क्यों नहीं देते जी, जहाँ भी बात के लिये इतना टालमटोल कर रहें हो । मिस गोविन्द, दर्गिन न मानना । उधे कैसे नष्ट दिखाने ।

दूसरा मन्त्राशय न और रहा चढ़ाया—मिस गोविन्द इतनी सीधी आर भारती हैं तभी आप इतना मित्राज करन हैं, दूसरी कोई होनी तो उसी बात पर बिगड़ पड़ो होनी ।

तीसरा मन्त्राशय न मनाह रह गया । अची बोलना छोड़ देंत भला कोई बात है उस पर आपसे दावा है कि मृणालिनी लिये जान हाजिर है

मृणालिनी ने दिया कि य गोस्ट उस चग पर चढ़ा रहे

छोटा-सा प्रहसन खेलने की तैयारी थी। प्रहसन स्वयं कैलासनाथ ने लिखा था। वही मुख्य ऐक्टर भी था। इस समय वह एक रेशमी कमीज पहने, नंगे मिर, नंगे पाँव, इधर-से-उधर मित्रों की आव-भगत में लगा हुआ था। कोई पुरारता—कैलास, जरा इधर आना, कोई उधर से बुलाता—कैलास, क्या उधर ही रहोगे। सभी उसे छेड़ते थे चुहले करते थे। बेचारे को जरा दम मारने का अवकाश न मिलता था।

सहसा एक रमणी ने उसके पास आकर कहा—क्यों कैलास, तुम्हारे साँप कहाँ हैं ? जरा मुझे दिखा दो।

कैलास ने उससे हाथ मिलाकर कहा—मृणालिनी, इस वक्त जमा करो, कल दिखा दूँगा।

मृणालिनी ने अप्रह किया—जी नहीं तुम्हें दिखाना पड़ेगा। मैं आज नहीं मानन की, तुम रोज कल-कल करते रहते हो।

मृणालिनी और कैलास दोनों सहपाठी थे और एक दूसरे का प्रेम में पगे हुए। कैलास को माँपा का पालन खेलाते और नचाने का शौक था। तरह-तरह के साँप पाल रखते थे। उनका स्वभाव और चरित्र की परीक्षा करने रहते थे। दोडे दिन हुए, उन्होंने विद्यालय में साँप पर एक मरज का व्याख्यान दिया था। साँपों को नचाकर दिखाने भी था। माँपा का बड़े-बड़े परिदृष्टन भी यह व्याख्यान सुनकर उग रहे थे। यह विद्या उसने एक बड़े सपर स सीखी थी। माँपा की जड़ी-बूटियाँ जमा करने का उसे मरज था। इतना पता भर मिल जाय कि किसी व्यक्ति



है। किसी के दाँत नहीं तोड़े गये। कहिए तो दिखा दूँ? यह कर उसने एक काले साँप को पकड़ लिया और बोला—मेरे इससे बड़ा और जहरीला साँप दूसरा नहीं है। अगर किसी काट ले, तो आदमी आनन-फ़ानन मर जाय। लहर भी न इसके काटे का मंत्र नहीं। इसके दाँत दिखा दूँ?

मृणालिनी ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—नहीं, नहीं, कैने ईश्वर के लिये इसे छोड़ दो! तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ!

इस पर एक दूसरे मित्र बोले—मुझे तो विश्वास नहीं लेकिन तुम कहते हो तो मान लूँगा।

कैलास ने साँप की गरदन पकड़कर कहा—नहीं माह्व, आँखों में देख कर मानिये। दाँत तोड़ कर बस में किया, तो किया। साँप बड़ा समझदार होता है। अगर उसे विश्वास जाय कि इस आदमी में मुझे कोई हानि न पहुँचगी, तो वह हर्गिज न काटेगा।

मृणालिनी ने जब देखा कि कैलास पर इस वक्त भूत है, तो उसने यह समाशासक वचन के विचार में कहा—भई, अब यहाँ मैं चला दूँगा गाना गुरु हो गया आन कोई बात मन'क'गी। यह कहते हुए उसने कैलास को पकड़ कर चलने का इशारा किया और कमर में निकल गई। कैलास तो 'बग' गया का ज़ुदा-समयान करके ही उस लेना था उसने सार की गरदन पकड़ कर जोर में दबाई, इनकी दबाई कि उसका मुँह लाल हो गया वह की मारी नमं न

मे दोली—'यार लोग मेरी बगलन न करें, मैं खुद अपनी बगलन कर लूँगी। मैं इस वक्त साँपों का नमाणा नहीं देयना चाहती। चलो छुट्टी लें।'

इस पर मित्रों ने ठट्ठा लगाया। एक मादय बोले—देयना तो आप सब कुछ चाहते, पर कोई दिग्वाये भी तो ?

कैलास को मृणालिनी की मैफी हुई मूरत देय कर मालूम आ कि इस वक्त उसका इनकार बान्तव मे उसे घुरा लगा है। वो ही प्रीति-भोज नमाप्त हुआ और गाना शुरू हुआ, उसने मृणालिनी और अन्य मित्रों को साँपों के दरवे के नामने ले जाकर दूसर बजाना शुरू किया। फिर एक-एक खाना खोल कर एक-एक साँप को निकालने लगा। बाह 'क्या कमाल था' ऐसा जान ता था कि ये कीडे उसकी एक-एक बात, उसके मन का एक-

भाव समझते हैं किसी को उठा लिया किसी को गरदन में लिया किसी को हथ में लपेट लिया। मृणालिनी बार-बार करती कि इन्ह गरदन में न डालो दर ही न दिग्वा दो। वस, नचा दो कैलास की गरदन में साँप का लिपटत दग कर की जान निकला ज नी यो पटन रही यो कि मैं न व्यथ हो । साँप दिग्वात को कहा मगर कैलास एक न मुनता था।

का क सम्मुख अपन नर्प-कला-प्रदर्शन का ऐसा अवसर रि वह क्व चूरता एक मित्र न टीका की—दोन नोड होगे ?

कैलास हैमकर बोला—दोन नोड डालना मदारियों का काम



साप ने जब तक उसके हाथों ऐसा व्यवहार कभी न पाया था। उसकी समझ में न आता था कि यह मुझसे क्या चाहते हैं। उसे शायद भ्रम हुआ कि यह मुझे मार डालना चाहते हैं, अतएव वह आत्मरक्षा के लिये तैयार हो गया।

कैलास ने उसकी गरदन खूब दबाकर उसका मुँह खोल दिया और उसके जहरीले दाँत दिखाते हुए बोला—जिन सज्जनों को शक हो, आकर देख ले। आया विश्वास, या अब भी कुछ शक है? मित्रों ने आकर उसके दाँत देखे और चकित हो गये। प्रत्यक्ष प्रमाण के सामने सन्देह को स्थान कहाँ। मित्रों की शंका-निवारण करके कैलास ने साँप की गरदन ढीली कर दी और उसे जमीन पर रखना चाहा, पर वह काला नेहुवन क्रोध से पागल हो रहा था। गरदन नरम पड़ते ही उसने सिर उठाकर कैलास की उँगली में जोर से काटा और वहाँ से भागा। कैलास की उँगली से टप-टप खून टपकने लगा। उसने जोर से उँगली दवाली और अपने कमरे की तरफ़ दौड़ा। वहाँ मेज की दराज में एक जड़ी रक्खी हुई थी, जिस पीसकर लगा उन से घातक विष भी दूर हो जाता था। मित्रों में हलचल पड़ गई। बाहर महफिल में भी खबर हुई। डाक्टर साहब घबड़ाकर दौड़ फौरन उँगली की जड़ कसकर बाँधी गई और जड़ी पीसन के लिये दी गई। डाक्टर साहब जड़ी के कायल न थे। वह उँगला का डमा भाग नज़र में काट देना चाहते थे, मगर कैलास की जड़ी पर पूर्ण विश्वास था। मृगालिनी पियानो पर बैठी हुई थी। यह खबर सुनते ही दौड़ी और कैलास



एक महाशय बोले—कोई मंत्र भाड़नेवाला मिले, तो सम्भव है, त्रय भी जान दब जाय ।

एक सुनलमान मज्जन ने इसका समर्थन किया—अरे साहब, कुत्र में पड़ी हुई लाशें जिन्दा हो गई हैं। ऐसे-ऐसे वाकमाल पड़े हुए हैं ।

डाक्टर चड्ढा बोले—मेरी अल पर पत्थर पड़ गया था कि इसकी चानो में आ गया । नश्तर लगा देता, तो यह नौबत ही क्यों आती । बार-बार समझाना रहा कि बेटा सांप न पालो, मगर जौन सुनता था 'बुलाइये, किसी माड-फूँक करनेवाले ही को बुलाइये । मेरा मन्त्र कुत्र ले-ले मैं अपनी नारी जायदाद उसके पैरो पर गव्य दूँगा लँगोटी बांधकर घर से निकल जाऊँगा, मगर मेरा कैलास मेरा प्यारा कैलास उठ बैठे ईश्वर के लिये किसी को बुलाइये

--- एक महाशय का किसी भाइयवाले से परिचय था । वह शेरुकर उस दुकानदार मगर कैलास की मरत देखकर उसे मंत्र जलान की विनम्रता से पढ़ा 'दाल' - अब क्या हो सकता है सरकार का कुत्र होना या हो चुका

अब मन्त्र उह क्या नहीं कहता कि 'जा बुझ न होना या हो चुका ' जे कुत्र होना था वह कहा हुआ ' भा-बाप न देह का संहार कहा उह मृणा-लनी का कामना-नर क्या पल्लव और पुष्प से रञ्जित हो सका ' मन व वह स्वर्ण-स्वप्न जिनम जीवन आनन्द का मोन दना हुआ था क्या व पूर हो चुका ' जीवन व



“न देगा न सही । घास तो कहीं नहीं गई है । दोपहर तक क्या दो आने की भी न काटूँगा ?”

इतने में एक आदमी ने द्वार पर आवाज दी—भगत, भगत क्या सो गये ? ज़रा किवाड़ खोलो ।

भगत ने उठकर किवाड़ खोल दिये । एक आदमी ने अन्दर आकर कहा—कुछ सुना, डाक्टर चड्ढा बाबू के लड़के को साँप ने काट लिया ।

भगत ने चौक कर कहा—चड्ढा बाबू के लड़के को । वही चड्ढा बाबू हैं न, जो छावनी में बँगले में रहते हैं ?

“हाँ-हाँ वही । शहर में हल्ला मचा हुआ है । जाते हो तो जाओ, आदमी बन जाओगे ।”

बृटे ने कठोर भाव से सिर हिला कर कहा—मैं नहीं जाता । मेरी बला जाय । वही चड्ढा हैं खूब जानता हूँ । भैया को लेकर उन्हीं के पास गया था खेतन जा रहे थे । पैरों गिर पड़ा कि एक नजर देख लीजिए मगर सीधे मुँह बन नकल की । भगवान बैठे सुन रहे थे । अब जान पड़ेगा कि बट का घम कैसा होता है । कहां लड़क है ?

‘नहीं जी यही तो एक लड़का था सुना है, सब न जवाब दे दिया है ।’

‘भगवान बड़ा कारमाज है । उस वक्त मरी आँखों से आँसू निकल पड़े थे, पर उन्हें तनिक भी दया न आई थी । मैं तो उनके द्वार पर होता, तो भी बात न पूछता ।’





रग है ? दुनिया बुरा कहेगी, कोरे, कोई परवाह नहीं । छोटे आदमियों में तो मर पेद होते ही हैं । बड़ों में कोई ऐव नहीं होता । देवता होते हैं ।”

भगत के लिये जीवन में यह पहला अवसर था कि ऐसा समाचार पाकर वह बैठ रह गया हो । ८० वर्ष के जीवन में ऐसा कभी न हुआ कि सोप की खर पाकर वह दौड़ा न गया हो । माघ-पूस की अंधेरी रात, चैन-वैशाख की धूप और लू, सावन-भादो के चढ़े हुए नदी और नाले, किसी की दस्तने कभी परवाह न की । वह तुरन्त घर में निकल पड़ता था, निःस्वार्थ, निष्काम । लेने-देने का विचार कभी दिल में आया ही नहीं । यह ऐसा काम ही न था । ज्ञान का मूल्य कौन दे सकता है ? यह एक पुण्य कार्य था । सैकड़ों निराशों को उसका मन्त्रो ने जीवन-दान दे दिया था पर आज वह घर से कदम नहीं निकाल सका । यह खबर सुन कर भी मोन जा रहा है ।

बुढ़िया ने कहा — नमस्व अंगोठो क पास रक्खा हुई है । उसका भी आज टाई पैसे हो गया इती हा न थी ।

बुढ़िया यह कह कर लेटी । बूट न कुप्पा बुन्नाइ, कुछ देर खड़ा रहा, फिर बैठ गया अन्त में लेट गया पर वह खबर उसका हृदय पर बोझ की भांति रक्खा हुई थी । उन मालूम हो रहा था उसकी कोई चीज खो गई है उसे मार कपड गीले हो गये हैं या पेरो में कीचड़ लगा हुआ है । जेने कोई उनका मन में बैठा हुआ उसे घर से निकालन के लिये कुरेद रहा है । बुढ़िया जरा देर



खबर न हुई। बाहर निकल आया। उसी वक्त गाँव का चौकीदार गश्त लगा रहा था। बोला—कैसे उठे भगत, आज तो बड़ी सरदी है! कहीं जा रहे हो क्या?

भगत ने कहा—नहीं जी, जाऊँगा कहाँ! देखता था अभी कितनी रात है, भला कै बजे होंगे?

चौकीदार बोला—एक बजा होगा और क्या। अभी धाने से आ रहा था, तो देखा कि डाक्टर चड्ढा बाबू के बँगले पर बड़ी भीड़ लगी हुई थी। उनके लड़के का हाल तो तुमने सुना होगा, कीड़े ने छू लिया है। चाहे मर भी गया हो। तुम चले जाओ, तो शायद बच जाय। सुना है, दस हजार तक देने को तैयार हैं।

भगत—मैं तो न जाऊँ चाहे वह दस लाख भी दें। मुझे दस हजार या दस लाख लेकर करना क्या है? कल मर जाऊँगा, फिर कौन भोगने वाला बैठा हुआ है!

चौकीदार चला गया। भगत ने आगे पैर बढ़ाया। जैसे नशे में आदमी की देह अपने क्रावू में नहीं रहती। पैर कहीं रखता है, पड़ता कहीं है, कहता कुछ है, जवान से निकलता कुछ है, वही हाल इस समय भगत का था। मन में प्रतिकार था, दम्भ था, हिंसा थी, पर कर्म मन के अधीन न था। जिसने कभी तलवार नहीं चलाई, वह इरादा करने पर भी तलवार नहीं चला सकता। उसके हाथ काँपते हैं, उठते ही नहीं।

भगत लाठी खट-खट करता लपका चला जाता था। चेतना रोकती थी, उपचेतना ठेलती थी। सेवक स्वामी पर हावी था।



डाक्टर चड्ढा ने चौडुन्गर नारायणी को गले लगा लिया। नारायणी चौडुन्गर भगत के पैरों पर गिर पड़ी और मृणालिनी ईशान के सामने आँखों में आंसू भरें पड़ने लगी—अब कैसे तबीयत है ?

एक घण्टा में चारों तरफ़ खबर फैल गई। मित्रगण मुखारुखाट उठें आने लगे। डाक्टर साहब घड़े अट्टा-भाव में हर एक के सामने भगत का यश गाते फिरते थे। सभी लोग भगत के दर्शनो के लिये उत्सुक हो उठे, मगर प्रन्दर जाकर देखा, तो भगत का कहीं पता न था। नौकरों ने कहा—अभी तो यहाँ बैठे चिलम पी रहे थे। हम लोग तमाखू देने लगे, तो नहीं ली, अपने पास से तमाखू निकालकर भरी।

यहाँ तो भगत की चारों ओर तलाश होने लगी और भगत लपका हुआ घर चला जा रहा था कि बुद्धिया के उठने से पहले घर पहुँच जाऊँ।

जब मेहमान लोग चले गये, तो डाक्टर साहब न नारायणी से कहा—बुड्ढा न-जान कहा चला गया एक चिलम तमाखू का भी ख़ादर न हुआ।

नारायणी ने कहा—मैं न जाना था इन फाँई बड़ी रक़म देंगी।

डाक्टर चड्ढा बोले—गत को तो मैं नहीं पहचाना पर ज़रा साफ़ हो जान पर पहचान गया। एक बार यह एक मरीज को लेकर आया था। मुझे अब याद आता है कि मैं ख़ेलन जा रहा था और मरीज को देखन से इनकार कर दिया था। आज उस दिन की बात याद करके मुझे जितनी ग़लति हो रही है, उसे प्रकट



## मुक्ति-मार्ग

सिपाही को अपनी लाल पगड़ी पर सुन्दरी को अपने गहनों पर और वैद्य को अपने नामने बैठे हुए रोगियों पर जो घमण्ड होता है वही किसान को अपने खेतों को लहराते हुए देख कर होता है भीगुर अपने ऊँच क खेतों को देखता, तो उस पर नशा-मा छा जाता 'तीन बीघे ऊँच थीं' इससे छ सौ रुपये का अनायास ही मिल जायगा और जो कहीं भगवान न डाढ़ी नज़र कर दी तो फिर क्या पछता दोनो बेल चुड़ट हो गए अब की नई गोई बरसुर क मजे से ले आवेगा कहीं दो बीघे खेत और मिल गए तो लिम्बू लेगा' स्वयं की क्या चिन्ता है ? बनिए अभी से उसकी खुशामद करने लग थ । ऐसा कोई न था, जिससे उसन गाव मे लडाई न की हो । वह





के डाढ़ से क्यों नहीं ले गए ? क्या मुझे कोई चूड़ा-चमार समझ लिया है ? या धन का घमंड हो गया है ? लौटाओ इनको !

बुद्धू—महतो, आज निकल जाने दो। फिर कभी इधर से आऊँ, तो जो चाहे सजा देना।

भाँगुर—कह दिया कि लौटाओ इन्हें। अगर एक भेड़ भी भेड़ पर आई, समझ लो, तुम्हारी खैर नहीं है।

बुद्धू—महतो, अगर तुम्हारी एक बैल भी किसी भेड़ के पैरो-तले आजाय, तो मुझे बिठा कर सौ गालियाँ देना।

बुद्धू बातें तो बड़ी नम्रता से कर रहा था, किंतु लौटने में अपनी हेठी समझता था। उसने मन में सोचा—इस तरह जरा जरा सी धमकियों पर भेड़ों को लौटाने लगा तो फिर मैं भेड़ें चगा चुका। आज लौट जाऊँ तो कल को निकलने का रास्ता ही न मिलेगा। सभी गेव जमाने लगेंगे।

बुद्धू भी पीटा आदमी था। बागड रोड़ी भेड़ें थी। उन्हें खेतों में बैठाने के लिये फी रान अठ अठ रोड़ी मजदूरी मिलनी थी। इससे उपरान्त दूध दबता था। उन पर फुवेल बनाता था। साचन लगा। इनमें गरम हो रहें हैं मर कर ही क्या लगें। कुछ इनका दबेल तो हूँ नहीं। भेड़ा न जा रहा है। पालया दबो तो अधीर हो गई। खेत में घुस पड़ी। कुछ उल्टे उल्टे से नार-मारकर खेत के किनारे लपटाता था और व इधर-उधर से निकलकर खेत में जा पड़ता था। भाँगुर ने आगे हाकर कहा—तुम मुझसे एकड़ा जवान बलें होना तुम्हारी मार हमें डाले। निकाल दूँगा।



जानकर अनजान बनते हो। बुद्धू को जानते नहीं, कितना भग-  
 डालू आदमी है। पय भी कुछ नहीं बिगड़ा। जाकर उसे मना लो।  
 नहीं तो तुम्हारे साथ सारे गाँव पर आक्रमण आ जायगी।  
 भीगुर की समझ में वान आई। पछताने लगा कि मैंने कदो-से  
 कहाँ उसे रोका। अगर भेडे थोड़ा-बहुत चर ही जातीं, तो कौन  
 मैं उजड़ा जाना था। हम किनारों का कल्याण तो दबे रहने  
 में ही है। ईश्वर को भी हमारा सिर उठा कर चलना अच्छा  
 नहीं लगता। जी तो बुद्धू के घर जाने को न चाहता था,  
 किन्तु दूसरों के आग्रह से मजबूर होकर चला। अगहन का  
 महीना था, कुहरा पड़ रहा था। चारों ओर अंधकार छाया हुआ  
 था। गाव से बाहर निकला ही था कि नहसा अपने ऊख के खेत  
 की ओर अग्नि की ज्वाला देखकर चौंक पड़ा। छाती धड-  
 कने लगी खेत में आग लगी हुई थी। बेनहाशा दौड़ा। मनाना  
 जाना था कि मेरे खेत में न हो, पर ज्यों-ज्यों समीप पहुँचना  
 था वह आशामय भ्रम शान होता जाता था। वह अनर्थ हो  
 ही गया जिसके निवारण के लिए घर में चला था। हत्यारे  
 न आग लगा ही थी ओर मेरे पीछे नार गाव को चौपट  
 किया। उसे गन्ना जान पड़ता था कि वह खेत आज बहुत  
 समीप आ गया है मानों बीच के परती खेतों का अग्निन्व ही  
 नहा रहा अन्त में जब वह खेत पर पहुँचा तो आग प्रचण्ड  
 रूप धारण कर चुकी थी भीगुर ने 'हाय-हाय' मचाना शुरू  
 किया। गाव के लोग दौड़ पड़े ओर खेतों से अरहर के पौधे



बैठा रहता। पूस का महीना आया। जहाँ सारी रात कोल्हू चला करते थे, गुड़ की सुगंध उड़ती थी, भट्टियाँ जलनी रहती थीं, और लोग भट्टियों के सामने बैठे हुक्का पिया करते थे, वहाँ सम्राटा छाया हुआ था। ठंड के मारे लोग साँझ ही से किवाड़े बंद करके पड़ रहते, और मींगुर को कोसते। माघ और भी कष्टदायक था। ऊख केवल धनदाता ही नहीं, किसानों का जीवनदाता भी है। उसी के सहारे किसानों का जाड़ा कटता है। गरम रस पीते हैं, ऊख की पत्तियाँ नापते हैं, उनके अगोड़े पशुओं को खिलाने हैं। गाँव के सारे कुत्ते, जो रात को भट्टियों की राख में सोया करते थे, ठंड से मर गये। कितने ही जानवर चारे के अभाव से चल बसे। शीत का प्रकोप हुआ और सारा गाँव खाँसी-बुखार में ग्रस्त होगया और यह नारा विपत्ति मींगुर की करनी थी—अभाग, हत्यारे मींगुर की।

मींगुर ने सोचते-सोचते निश्चय किया कि दुग्ध की दशा भी अपनी ही-सी बनावट है। उससे कारण मेरा सर्वनाश होगया, और वह चैन की बंसी बजा रहा है। मैं भी उसका सर्वनाश करूँगा।

जिस दिन इस घातक कलह का दीनारोपण हुआ, उसी दिन से दुग्ध ने इधर पाना छोड़ दिया था। मींगुर ने उससे खून-खून बहाना शुरू किया। वह दुग्ध को दिखाना चाहता था कि तुम्हारे ऊपर मुझे दितुल्य संदेह नहीं है। एक दिन कंदन लेने के बहाने गया, फिर दूध लेने के बहाने। दुग्ध उसका खून आकर-

तो क्या बुरा करता था ? यह अन्याय किनसे सहा जायगा ?

एक दिन वह टहलता हुआ चमारों के टोले की तरफ चला गया । हरिहर को पुकारा । हरिहर ने आकर राम-राम की और चिलम भरी । दोनों पीने लगे । यह चमारों का मुखिया बड़ा दुष्ट आदमी था । सब किसान इससे थर-थर काँपते थे ।

भींगुर ने चिलम पीते-पीते कहा—आजकल फाग-वाग नहीं होती क्या ? सुनाई नहीं देता ।

हरिहर—फाग क्या हो, पेट के धन्धे से छुट्टी ही नहीं मिलती । कहो, तुम्हारी आजकल कैसी निभती है ?

भींगुर—क्या निभती है । नकटा जिया बुरे हवाले । दिन-भर कल में मजदूरी करते हैं, तो चूल्हा जलता है । चाँदी तो आजकल बुद्धू की है । रखने को ठौर नहीं मिलता । नया घर बना, भेड़े और ली हैं । अब गृहपरवेस की धूम है । मानों गाँवों में सुपारी जायगी ।

हरिहर—लक्ष्मी मैया आती हैं तो आदमी की आँखों में मील आजाता है पर उसको देखो, धरती पर पैर नहीं रखता । बोलता है तो ऐंठकर बोलता है

भींगुर -क्यों न ऐंठ, उस गाँव में कौन है उसकी टक्कर का ? पर यार, यह अनीति नहीं देखी जाती । भगवान दे, तो मिर भुका कर चन्नता चाहिए । यह नहीं कि अपने बराबर किसी को समझे ही नहीं । उसकी डींग सुनाता हूँ तो बदन में आग लग जाती है । कल का वागी आज का सेठ । चला है हमी से अकड़ने ।

॥ बुद्धू किसी से सीधे मुँह बात न करता। भेड़ रखने की दूनी कर दी थी। अगर कोई एतराज करता, तो बेलाग था—तो भैया, भेड़ें तुम्हारे गले तो नहीं लगाता हूँ। जी न ह, मत रक्खो, लेकिन मैंने जो कह दिया है, उससे एक कौड़ी कम नहीं हो सकती। गरज थी, लोग इस रुखाई पर भी उसे रहते थे, मानो पण्डे किसी यात्री के पीछे पड़े हो।

लक्ष्मी का आकार तो बहुत बड़ा नहीं, और जो है वह भी समया-वार छोटा-बड़ा होता रहता है। यहाँ तक कि कभी वह अपना राट् आकार समेटकर उसे कागज के चन्द्र अनारों में छिपा लेती। कभी-कभी तो मनुष्य की जिह्वा पर जा बैठती है, आकार का पी हो जाता है। किन्तु उनके रहने को बहुत स्थान की जरूरत होती है। वह आई और घर बढ़ने लगा। छोटे घर में लक्ष्मी से नहीं रहा जाता। बुद्धू का घर भी बढ़ने लगा। द्वार पर वरामदा डाला गया, दो की जगह छः कोठरियाँ बनवाई गईं। यो कहिए कि शकान नए सिरे से बनने लगा। किसी किसान से लकड़ी माँगी, किसी से खपरो का आँवा लगाने के लिए उपले, किसी से बाँस और किसी से सरकण्डे। दीवार की उठवाई देनी पड़ी। वह भी नक़्द नहीं, भेड़ों के बच्चों के रूप में। लक्ष्मी का यह प्रताप है। सारा काम घेगार में हो गया। अन्त में अच्छा-खासा घर तैयार हो गया। गृह-प्रवेश के उत्सव की तैयारियाँ होने लगीं। इधर भींगुर दिन-भर मजदूरी करता तो कहीं आधे पेट खन्न मिलता। बुद्धू के घर कंचन बरस रहा था। भींगुर जलता था,



करने विधान क्या पड़ेगा ? मन्त्र ।

भोग्य और शक्ति के मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम ही भोग्य  
मोक्षी मन्त्र । मन्त्र का मन्त्र, मन्त्र और मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम  
भोग्य मन्त्र, जो मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम  
का नाम है ।

७

दूसरे दिन भोग्य का नाम पर जो मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम  
पड़ेगा । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम ।

भोग्य का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम ।  
मेरी मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम ।  
मेरी मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम ।  
मेरी मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम ।

बुद्ध । भोग्य, मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम ।  
एक ही मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम ।  
न जान क्या मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम ।  
न जान क्या मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम ।  
न जान क्या मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम ।

यह कह कर बुद्ध अपने गदात्मक का सामान दिखाने लगा ।  
धी, शकर मैदा तरकारी सब मंगा रखा था । केवल 'मन्त्रनारायण'  
की कथा की दर थी । भोग्य का नाम । मन्त्र का नाम । मन्त्र का नाम ।  
उसने स्वयं कभी की था, और न कभी किसी को करतें देली थी ।  
मजदूरी करके घर लौटा, तो मन्त्र पहले जा काम उसने किया

अभी कल लँगोटी लगाए खेतों में कोए हँकाया करता था, आज उसका आसमान में दिया जलता है ।

हरिहर—कहो, तो कुछ उताजोग करूँ ?

मींगुर—क्या करोगे ? इसी डर से तो वह गाय भैंस नहीं पालता ।

हरिहर—भेड़े तो हैं ?

मींगुर—क्या बगला मारे पखना हाथ !

हरिहर—फिर तुम्हीं सोचो ।

मींगुर—ऐसी जुगुत निकालो कि फिर पनपने न पावे ।

इसके बाद फुस-फुस करके बात होने लगी । यह एक रहस्य है कि भलाइयो में जितना द्वेष होता है, बुराइयों में उतना ही प्रेम । विद्वान् विद्वान् को देखकर, साधु साधु को देखकर और कवि कवि को देखकर जलता है । एक दूसरे की मुरत नहीं देखना चाहता पर जुआरी जुआरी को देखकर शराबी शराबी को देखकर चोर चोर को देखकर महानुभूति दिखाना है महायत्ना करना है एक पड़िन जी अगर औंधरे में ठोकर खाकर गिर पड़े तो दूसर पड़िन जी उन्हें उठाने व बदले दो ठोकरे और लगा-वेगे कि वह फिर उठ ही न सके पर एक चोर पर आफन चाइ देख दूसरा चोर उसकी आइ कर लेन है बुराई से सब प्रता करते है इसलिए बुरा म परस्पर प्रेम होता है । भलाइ को मारा समार प्रशंसा करत है इसलिए भलो म विरोध होता है चोर को मार कर चोर क्या पावगा ? प्रता विद्वान का अपमान

हरिहर—तुम नहीं लाठी कन्धे पर गकरो बल्लिया को बाँ रहे थे ?

बुद्धू—बड़ा सचा है तू ! तूने मुझे बल्लिया को बाँयते देखा था ?

हरिहर—तो मुझ पर काहें को बिगडते हो भाई ? तुमने नहीं बाँधी, नहीं सही ।

ब्राह्मण—इसका निश्चय करना होगा । गो-हत्या का प्रायश्चित्त करना पड़ेगा । कुछ हँसी-ठट्टा है ।

भोगुर—महाराज, कुछ जान-बूझ कर तो बाँधी नहीं ।

ब्राह्मण—इससे क्या होता है ? हत्या इमी तरह लगती है, कोई गऊ को मारने नहीं जाता ।

भोगुर—हाँ, गडआँ को खोलना-बाँधना है तो जोखिम का काम !

ब्राह्मण—शास्त्रो मे इसे महापाप कहा है । गऊ की हत्या ब्राह्मण की हत्या से कम नहीं ।

भोगुर—हाँ, फिर गऊ तो ठहरी ही । इसी से न इसका मान होता है । जो माता, सो गऊ, लेकिन महागज, चूक हो गई । कुछ ऐमा कीजिये कि थोड़े मे बेचारा निपट जाय ।

बुद्धू खडा सुन रहा था कि अनायास मेरे सिर हत्या मढी जा रही है । भोगुर की कूटनीति भी समझ रहा था । मै लाख कहूँ, मैने बल्लिया नहीं बाँधी, मानेगा कौन ? लोग यही कहेंगे, कि प्रायश्चित्त से बचने के लिये ऐसा कह रहा है ।

ब्राह्मण देवता का भी उसका प्रायश्चित्त कराने मे कल्याण

वह अपनी बछिया को बुद्धू के घर पहुँचाना था। उसी रात को बुद्धू के यहाँ 'सत्यनारायण की कथा' हुई। ब्रह्मभोज भी किया गया। सारी रात विप्रों का आगत-स्वागत करते गुज़री। बुद्धू को भेड़ों के झुण्ड में जाने का अवकाश ही न मिला। प्रातःकाल भोजन करके उठा ही था ( क्योंकि रात का भोजन सवेरे मिला था ) कि एक आदमी ने आकर खबर दी—बुद्धू, तुम यहाँ बैठो हो, उधर भेड़ों में बछिया मरी पड़ी है। भले आदमी, उसकी पगहिया भी नहीं खोली थी ?

बुद्धू ने सुना, और मानो ठोकर लग गई। भौंगुर भी भोजन करके वहीं बैठा था। बोला—हाय मेरी बछिया ! चलो, जरा देखूँ तो, मैंने तो पगहिया नहीं लगाई थी। उसे भेड़ों में पहुँचा कर अपने घर चला गया। तुमने वह पगहिया कब लगा दी ?

बुद्धू भगवान् जाने जो मैंने उसकी पगहिया देखी भी हो। मैं तो तब से भेड़ों में गया हा ना।

भौंगुर जान न तो पगहिया मैंने लगा दी है, मैंने तो पगहिया नहीं लगाई थी।

एक प्राणिक मरा तो भेड़ों में हाँ, दुनियाँ में यही रहना कि बुद्धू की अपसावधानी से उसकी पगहिया पकड़ ली है।

दरदर- मैंने कल साँभ लाई भेड़ों में बछिया की पगहिया देखी थी।

बुद्धू रुक



होता था। भला ऐसे अवसर पर कम चरुनेवाले थे। फल यह हुआ कि दुग्धू को हत्या लग गई। ब्राह्मण भी उससे जले हुए थे। कमर निकालने की घात मिली। तीन मास का भिक्षा-दण्ड दिया, फिर मात तीर्थ-स्थानों की यात्रा, उस पर पाँच सौ विप्रों का भोजन और पाँच गड्डों का दान। दुग्धू ने सुना, तो बधिया बैठ गई। रोने लगा तो दण्ड घटाकर दो मास का दिया गया। इसके सिवा कोई रिश्तायत न हो सकी। न कहीं अपील, न कहीं प्रियाद। बेचारे को यह दण्ड स्वीकार करना पड़ा।

६

दुग्धू ने भेडे ईश्वर को माँपीं। लडके छोटे थे। स्त्री अकेली क्या-क्या करेगी। जाकर द्वारों पर खड़ा होता, और मुँह छिपाए हुए कहता - गाय की बाछी दियो वनवास। भिक्षा तो मिल जाती, किन्तु भिक्षा के साथ दो-चार कठोर अपमान-जनक शब्द भी सुनने पड़ते। दिन की जो कुछ पाना वही शाम को किसी पेड़ के नीचे बना कर खा लेता और बसा पड़ रहता। कष्ट की तो उसे परवा न थी भेडा के साथ दिन-रुचलता ही था, पड़ के नाचें सोना हा या भोजन भी इनमें कुछ ही अच्छा मिलता होगा पर लज्जा था भिक्षा मागने को बग़र सरक नव सोइ ककशा यह व्यग्य कर दती या कि राटा कमल के। अच्छा डग निकाला है तो उस हादिक बदना होनी या पर कर क्या।

दा महीन के बाद वह घर लाट। चल बटे हुए थे दुबल इतना मानो साठ वर्ष का बूढ़ा है नाथयात्रा के लिये स्त्रियों



और किस लिये जलता ?

सन फी कल बन्द हो जाने के कारण मींगुर अब बेलदारी का काम करता था। शहर में एक विशाल धर्मशाला बन रही थी। हजारों मजदूर काम करते थे। मींगुर भी उन्हीं में था। सातवें दिन मजदूरी के पैसे लेकर घर आता और रात-भर रहकर सबेरे फिर चला जाता था।

बुद्धू भी मजदूरी की टोह में यहीं पहुँचा। जमादार ने देखा, दुर्बल आदमी है; कठिन काम तो इससे हो न सकेगा, कारीगरों को गारा देने के लिये रख लिया। बुद्धू सिर पर तसला रखे गारा लेने गया तो मींगुर को देखा। राम-राम हुई, मींगुर ने गारा भर दिया बुद्धू उठा लाया। दिन-भर दोनों चुपचाप अपना-अपना काम करते रहे।

मल्ल्या-ममय मींगुर न पला कुल बनाओगे न ?

बुद्धू नहीं तो गारेंगा क्या ?

मींगुर मैं तो एक जन चरन कर रहा हूँ इस जुन मत्त पर काट इन से जैन समझेंगे।

बुद्धू और और सब दया उठा रहा है बगैर त आता आता मैं घर न लेता क्या है ? मैं तो एक ममय ममय था यहाँ मैं बड़ा महंगा मिलता है इसी कारण मैं जैन पर काट गेहूँ लेता हूँ। तुम तो ममय बनाए रखो मैं इस लिये तुम्हें काटया, सेको में बनें।

मींगुर तब भी ना ना है



बुद्धू—नवे बहुत हैं। यही गारे का तमला माँजे लेता हूँ।

आग जली, आटा गूँधा गया। मींगुर ने कच्ची-पक्की रोटियाँ बनाईं। बुद्धू पानी लाया। दोनों ने लाल मिर्च और नमक से रोटियाँ खाईं। फिर चिलम भरी गई। दोनों आदमी पत्थर की सिलों पर लेट गए और चिलम पीने लगे।

बुद्धू ने कहा—तुम्हारी ऊख में आग मैंने लगाई थी।

मींगुर ने विनोद के भाव में कहा—जानता हूँ।

थोड़ी देर के बाद मींगुर बोला—बछिया मैंने ही बाँधी थी, और हरिहर ने उसे कुछ खिला दिया था।

बुद्धू ने वैसे ही भाव में कहा—जानता हूँ।

फिर दोनों सो गए।

— — —

और किस लिये जन्ता

सन की कल इन्द्र हो जाने के कारण भौंगुर अब बेलदारी का काम करता था। शहर में एक विशाल धर्मशाला बन रही थी। हजारों मजदूर काम करते थे। भौंगुर भी उन्हीं में था। मानवें दिन मजदूरी के पैसे लेकर घर आता और रात-भर रहकर सबेरे फिर चला जाता था।

दुद्धू भी मजदूरी की ढोह में यहीं पहुँचा। जमादार ने देखा, दुर्दल आदमी है; कठिन काम तो इससे हो न सकेगा, कारीगरो को गारा देने के लिये रख लिया। दुद्धू सिर पर तसला रखे गारा लेने गया, तो भौंगुर को देखा। राम-राम हुई, भौंगुर ने गारा भर दिया, दुद्धू उठा लाया। दिन-भर दोनो चुपचाप अपना-अपना काम करते रहे।

मन्व्या-समय भौंगुर ने पूछा—कुछ बनाओगे न ?

दुद्धू—नहीं तो खाऊँगा क्या ?

भौंगुर—मैं तो एक जून चबेना कर लेता हूँ। इस जून सत्तु पर काट देता हूँ। कौन भंगद करे।

दुद्धू—इधर-उधर लकड़ियाँ षडी हुई हैं बटोर लाओ। आटा मैं घर से लेता आया हूँ। घर ही पर पिसबा लिया था। यहाँ तो बड़ा महुँगा मिलता है। इसी पत्थर की चट्टान पर आटा गूँधे लेता हूँ। तुम तो मेरा बनाया खाओगे नहीं इसलिये तुन्हीं रोटियाँ सेको, मैं बना दूँगा।

भौंगुर—तब भी नो नहीं है ?

लड़के का लालन-पालन किया था। अपना काम कड़ी मुस्ती और परिश्रम से करती थी। उसे निकालने का कोई बहाना नहीं था और व्यर्थ खुचड़ निकालना इन्द्रमणि जैसे भले आदमी के स्वभाव के विरुद्ध था। पर सुखदा इस सम्बन्ध में अपने पति से सहमत न थी, उसे सन्देह था कि दाई हमें लूटे लेती है। जब दाई बाजार से लौटती तो वह ढालान में छिपी रहती कि देखू आटा कहीं छिपाकर तो नहीं रख देती, लकड़ी तो नहीं छिपा देती। उसकी लाई हुई चीजों को घण्टों देखती, पूछ-ताछ करती। बार-बार पूछती, इतना ही क्यों? क्या भाव है? क्या इतना महँगा हो गया? दाई कभी तो इन सन्देहात्मक प्रश्नों का उत्तर नम्रतापूर्वक देती, किन्तु जब कभी वह ज़्यादा तेज हो जाती, तो वह भी कड़ी पड़ जाती थी। शपथें खाती। सफाई की शहादतें पेश करती। वाद-विवाद में घण्टों लग जाते थे। प्रायः नित्य यही दशा रहनी थी और प्रतिदिन यह नाटक दाई के अश्रुपात के साथ समाप्त होता था। दाई का इतनी सहिष्णुता मेलकर रहे रहना सुखदा के सन्देह को और भी पुष्ट करता था। उसे कभी विश्वास नहीं होता था कि यह बुढ़िया केवल बच्चे के प्रेमवश पड़ी हुई है। वह बुढ़िया को इतनी बाल-प्रेमशीला नहीं समझती थी।

## २

मयोग से एक दिन दाई को बाजार से लौटने में ज़रा देर हो गई। वहाँ दो कुँजड़ियों में देवासुर सगाम मचा था। उनका चित्र

## महातीर्थ

१

मुंशी इन्द्रमणि की आमदनी कम थी और खर्च ज्यादा । अपने बच्चे के लिए दाई रखने का खर्च न उठा सकते थे, लेकिन एक तो बच्चे की सेवा-सुभूषा की फिन्न और दूसरे अपने बराबर वाला से हेंठे बनकर रहने का अपमान इस खर्च को सहने पर मजबूर करता था । बच्चा दाई को बहुत चाहता था, हरदम उसके गले का हार बना रहता था, इसलिए दाई और भी जरूरी मालूम होती थी । पर शायद सब से बड़ा कारण यह था कि वह मुरौवत के बश दाई को जवाब देने का साहस नहीं कर सकते थे । बुढ़िया उन के यहाँ तीन साल से नौकर थी । उसने उनके इकलौते

तुम्हारे बिना वह व्याकुल नहीं हुआ जाना।

दाई ने इस आँखा को मानना आवश्यक नहीं समझा। वहूजी का क्रोध ठंडा करने के लिए इससे उपयोगी और कोई उपाय न सूझा। उसने रुद्रमणि को इशारे में अपने पास बुलाया। दोनों हाथ फैलाए लड़खड़ाना हुआ उसकी ओर चला। दाई ने उसे गोद में उठा लिया और दरवाजे की तरफ चली। लेकिन सुखदा बाज की तरह झपटी और रुद्र को उसकी गोदी से छीन कर बोली—तुम्हारी यह धूर्तता बहुत दिनों में देख रही हूँ। यह तमाशे किमी और को दिखाइए। यहाँ जी भर गया।

दाई रुद्र पर जान देती थी और समझती थी कि सुखदा इस बात को जानती है। उसकी समझ में सुखदा और उसके बीच यह ऐसा मजबूत सम्बन्ध था, जिसे साधारण झटके तोड़ न सके थे। यही कारण था कि सुखदा के कटु वचनों को सुनकर भी दाई यह विश्वास न होता था कि वह मुझे निकालने पर प्रस्तुत है। सुखदा ने यह बातें कुछ ऐसी कठोरता से कहीं और रुद्र को ऐसी निर्दयता से छीन लिया कि दाई से मर्ह न हो सका। बोली—वहूजी मुझसे कोई बड़ा अपराध तो नहीं हुआ, बहुत तो पाप घटे की देर हुई होगी। इसी पर आप इतना विगड़ रही हैं, तो माफ क्यों नहीं कह देती कि दूसरा दरवाजा देखो। नारायण ने पैदा किया है तो खाने को भी देगा। मजदूरी का अकाउंट थोड़े ही है।

सुखदा ने कहा—तो यहाँ तुम्हारी परवाह ही कौन करता है

मय हाव-भाव, उनका ज्ञानेय तर्क-वितर्क, उनके अट्टाज और व्यक्त मंत्र अनुपम थे। विष के दो नद थे या ज्वाला के दो पर्वत, जो दोनों तरफ से उमड़कर आपस में टकरा गये थे! वाक्य का क्या प्रभाव था, जैसी विचित्र विवेचना! उनका शब्द-बाहुल्य, उनकी मार्मिक विचारशीलता, उनके अलंकृत शब्द-विन्यास और उनकी उपमाओं की नवीनता पर ऐसा कौन सा कवि है, जो सुध न हो जाता। उनका धैर्य, उनकी शान्ति विस्मयजनक थी। दर्शकों की एक ग्वासी भीड़ लगी थी। वह लाज को भी लज्जित करने वाले इगरे, वे अगलील शब्द जिनसे सलिलता के भी कान खड़े होते, मैकडो रसिकजनों के लिए मनोरंजन की मानग्री बने हुए थे।

गड़े भी गड़ो हो गई कि देखूँ क्या नामला है। तमाशा इतना मनोरंजक था कि उसे समय का दिलकुल ध्यान न रहा। एकएक जयनों के घटे की आवाज कान में आई तो चौंक पड़ी और लपकी हुई घर की ओर चली।

सुबह भरी बैठी थी गड़े को इतना हो त्योंरी दबलकर दोनो- -क्या याजार में खो गई थी।

गड़ विनयपूरा भवस दोनो एक नान-पड़वान की सहरी से भेट हो गई वह जान करन लगी।

सुबह इस जवाब में और भी बिटकर दोनो प्रतां इस नर जान को डर हो रहा है और दुम्मे सेर-सपटे की मूकनी है।

परन्तु गड़ न उस समय जान हों न इशाल समझी दच्छे की गोद में लेन चली, पर सुबह न झिड़ककर कड़ा रहन दो,

के लिए तड़प रहा था। जी चाहता था कि एक बार चाबक को लेकर प्यार कर लूँ; पर यह अभिलाषा लिये ही उसे घर में बाँध निकलना पड़ा।

रुद्रमणि दाई के पीढ़े-पीढ़े दरवाजे तक आया, पर दाई ने उस दरवाजा बाहर से बन्द कर दिया, तो वह सन्नत कर जमीन पर लोट गया और अन्ना-अन्ना कह कर रोने लगा। रुद्रमणि ने पुनः प्यार किया, गोद में लेने की कोशिश की, मिठाई देने का लालच दिया, मेला दिखाने का वादा किया, इमम जब काम न चला तो चन्दर, सिपाही, लूतू और होआ की धमकी दी। पर रुद्र ने यही रौद्र भाव धारण किया कि किसी तरह चुप न हुआ। यहाँ तक कि सुखदा को क्रोध आ गया, बगैरे हो नहीं छोड़ दिया और आकर घर के धन्धे में लग गई। रोते रोते रुद्र का मुँह पौर गाँ लाल हो गये, आँखें सूज गईं। निदान वह वही जमीन पर सिमकते-सिमकते मो गया।

सुखदा ने समझा था कि ब्रजा थोड़ी देर में रो-धोकर चुप हो जायगा, पर रुद्र ने जगते ही अन्ना की रट लगाई। तीन बजे इन्द्रमणि दफ्तर से आये और ब्रज की यह दशा देखी तो हँस की तरफ कुपित नेत्रों से देख कर उस गोद में उठा लिया और बहलाने लगे। जब अन्त में रुद्र को यह विश्वास हो गया कि दाई मिठाई लेने गई है तो उसे कुछ सन्तोष हुआ।

परन्तु शाम होते ही बसने फिर भीखना शुरू किया—अन्न मिठाई ला।

पुकारी-जैसी लौहिनै गली-गली ठोकरे खाती फिरती हैं !

दाई ने जवाब दिया—हाँ, नारायण आप को कुशल से रखें। लौहिनै और दाइयाँ आपको बहुत मिलेगी। मुझ से जो कुछ अपराध हुआ हो, क्षमा कीजिएगा। मैं जाती हूँ।

सुखदा—जाकर मरदाने में अपना हिसाब साफ़ कर लो।

दाई—मेरी तरफ से रुद्र बाबू को मिठाइयाँ मँगवा दीजिएगा।

उतने में इन्द्रमणि भी बाहर से आ गये। पूछा—क्या है क्या ?

दाई ने कहा—कुछ नहीं। बहू जी ने जवाब दे दिया है, घर जाना हूँ।

इन्द्रमणि गृहस्थी के जंजाल से इस तरह बचते थे, जैसे कोई नंगे पैरवाला मनुष्य काँटों से बचे। उन्हें सारे दिन एक ही जगह खड़े रहना मजूर था, पर काँटों में पैर रखने की हिम्मत न थी। निव्र होकर बोले—बान क्या हुई ?

सुखदा ने कहा—कुछ नहीं। अपनी इच्छा। नहीं जी चाहता, नहीं रखते। किसी के हाथों निव्र तो नहीं गये

इन्द्रमणि ने मुँहना कर कहा—तुम्हें बैठे-बैठे एक-न एक चुचड़ मुन्नती ही रहती है।

सुखदा ने निनक कर कहा—हा सुभ तो इसका रोग है। क्या करने स्वभाव ही ऐसा है। तुम्हें यह बहुत प्यारी है तो ले जाकर गले में बांध लो। मेरे यहाँ जहरत नहीं।

दाई घर से निकली तो आँखें दबदबाई हुई थीं। हृदय रुद्रमणि



गया। वह बालक जिसे गोद में उठाते ही नरमी, गरमी और भारीपन का अनुभव होता था, अब सूखकर काटा हो गया था। सुखदा अपने बच्चे की यह दशा देखकर भीतर-ही-भीतर कुढ़ती और अपनी मूर्खता पर पछताती। इन्द्रमणि, जो शान्तिप्रिय आत्मी थे, अब बालक को गोद से अलग न करते थे, उसे रोज़ अपने साथ हवा खिलाने ले जाते थे, उसके लिये नित्य नये खिलौने लाते थे। पर वह मुर्झाया हुआ पौधा किसी तरह भी न पनपता था। दाई उसके लिये संसार का सूर्य थी। उस स्वाभाविक गर्मी और प्रकाश से वंचित रहकर हरियाली की बहार कैसे दिखाता? दाई के बिना उसे अब चारों ओर अँधेरा और सन्नाटा दिखाई देता था। दूसरी अन्ना तीसरे ही दिन रख ली गई थी, पर रुद्र उसकी सूरत देखते ही मुँह छिपा लेता था मानो वह कोई डाइन या चुड़ैल है।

प्रत्यक्ष रूप में दाई को न देख कर रुद्र अब उसकी कल्पना में मग्न रहता। वहाँ उसकी अन्ना चलती फिरती दिखाई देती थी। उसका वही गोद थी, वही स्नेह, वही प्यारी-प्यारी बातें, वही प्यारे गाने, वही मजेदार मिठाइयाँ, वही सुहावना संसार, वही आनन्द-मय जीवन। अकले बैठ कर कल्पित अन्ना से बातें करता—अन्ना, कुत्ता भूक। अन्ना गाय दूध देनी। अन्ना, उजला-उजला धोड़ा दौड़े। सवेरा होते ही लोटा लेकर दाई की कोठरी में जाता और कहता, अन्ना, पानी। दूध का गिलास लेकर उसकी कोठरी में रख आता और कहता, अन्ना दूध पिला। अपनी चारपाई पर तकिया रखकर चादर से ढाँक बना और कहता, अन्ना सोती है। सुखदा

इस तरह दो तीन दिन बीत गये । रुद्र को अन्ना की रट लगाने और रोने के सिवा और कोई काम न था । वह शान्त प्रकृति कृता जो उसकी गोद से एक क्षण के लिए भी न उतरता था, वह मौन व्रतधारी बिल्ली जिसे ताख पर देख कर वह खुशी से झूला न समाता था, वह पंखहीन चिड़िया जिस पर वह जान देता था, सब उसके चित्त से उतर गये । वह उनकी तरफ आँख उठा कर भी नहीं देखता । अन्ना-जैसी जीती जागती प्यार करने वाली, गोद में लेकर घुमाने वाली, थपक-थपक कर सुलाने वाली, गा-गाकर खुश करने वाली चीज का स्थान इन निर्जीव चीजों से पूरा न हो सकता था । वह अकमर सोते-सोते चौंक पड़ता और अन्ना-अन्ना पुकार कर हाथों से इशारा करता, मानो उसे बुला रहा हो । अन्ना की खाली कोठरी में घण्टों बैठा रहता । उसे आशा होनी कि अन्ना यहाँ आनी होगी इस कोठरी का दरवाजा खुलते सुनता तो 'अन्ना' 'अन्न' कह कर दौड़ता । ममकता के अन्ना आ गई । उसका भर 'हन्न' शरीर घुन गया गुलाब-जैमा चेहरा मूख गया माँ और बाप उसकी माहनी हँसी के लिये नरम कर रह जाते थे । यदि बहुत गुदगुद न या छेड़न न हँसना भी तो ऐसा जान पड़ना था कि दिल न तो है मना जबल दिल रखने के लिये हैस रहा है उस अब दृष्टि में प्रेम नहाया न मिथ्या से, न मेवे से न मोठे विस्फुट से न नजी इमरतियों से उनम मजा तब था, जब अन्ना अपने हाथों में गिलानी थी अब उनमें मजा नहीं था । दो साल का लहलहाना हुन्ना सुन्दर पौधा मुन्ना

इन्द्रमणि ने काली घटाओं की ओर देख कर कहाई से जवाब दिया—बड़े हकीम नहीं, धन्वनरि भी आवे, तो भी उसे गों 'फायदा न होगा ।

सुखदा ने कहा—तो क्या अब किसी की दवा ही न होगी ?

इन्द्रमणि—बस, इसकी एक ही दवा है और वह अन्मृत है।

सुखदा—तुम्हें तो बस, वही धुन मवार है । क्या दुडिग आकर अमृत पिला देगी ?

इन्द्रमणि—वह तुम्हारे लिए चाहे बिप हो; पर लडक उन्नि अमृत ही होगी ।

सुखदा—मैं नहीं समझती कि ईश्वरेच्छा उसक अधीन है ?

इन्द्रमणि—यदि नहीं समझती हो और अब तक नहीं समझी, तो रोओगी । बच्चे से हाथ धोना पड़ेगा ।

सुखदा—चुप भी रहो क्या अशुभ मुँह से निकालत हो ? यदि ऐसी-ही जली-कटी सुनाना है, तो बाहर चले जाओ ।

इन्द्रमणि—तो मैं जाना हूँ पर याद रखो, वह हत्या तुम्हारी ही रैन पर होगी । यदि लडक को तन्दुरुस्त देखना चाहना हो तो उसी दाई के पास जाओ । उसमें बिनती आर प्रार्थना करो क्षमा माँगो । तुम्हारे बच्चे की जान उसी की दया के अधीन है ।

सुखदा ने कुछ उत्तर नहीं दिया । उसकी आँखों से आँसू जारी थे ।

इन्द्रमणि ने पूछा—क्या मर्जी है, जाऊँ उसे बुला लाऊँ ?

सुखदा—तुम क्यों जाओगे, मैं आप चली जाऊँगी ।

जब राने बैठनी तो कटोरे उठा-उठा कर अन्ना की कोठगी में ले जाता और कहता, 'अन्ना राना राना' । अन्ना अब उसके लिए एक स्वर्ग की वस्तु थी, जिसके लौटने की अब उसे बिलकुल आशा नहीं । रुद्र के म्बभावसे धीरे-धीरे वालकों की चपलता और सजीवता की जगह एक निराशा जनक धैर्य, एक आनन्द-बिहीन शिथिलता दिखाई देने लगी । इस तरह तीन हफ्ते गुजर गये । बरसात का मौसम था । कभी बेंचें करने वाली गर्मी, कभी हवा के ठण्डे झोंके । दुखार और जुकाम का जोर था । रुद्र की दुर्बलता इस ऋतु-परिवर्तन को बर्दाश्त न कर सकी । सुखदा उसे फलालेन का कुर्ता पहनाये रखती । उसे पानी के पास नहीं जाने देती । नंगे पैर एक कदम नहीं चलने देती पर सड़ी लग ही गई । रुद्र को खासी और दुखार आने लगा ।

४

प्रभात का समय था रुद्र चारपाई पर आँखें बन्द किये पड़ा था डाक्टरों का इलाज निष्फल हुआ । सुखदा चारपाई पर बैठी उसकी हानीम नेल की मालिश कर रही थी और इन्द्रमणि विशद-मूर्ति बन हुए करुणपण आँखों से बच्च को देख रह थे । इधर सुखदा ने वह बहुत कम बोलते थे उन्हें उससे एक तरह की चिड़-सी हा गई थी वह रुद्र की इस बीमारी का एक मात्र कारण उसका समझते थे, वह उनकी दृष्टि में बहुत नीच स्वभाव की स्त्री थी । सुखदा ने डरत-डरत कहा, आज बड़े हकीम साहब को बुला लाते । शायद उनकी दवा से फायदा हो ।

इन्द्रमणि ने काली घटाओं की ओर देग कर नगाई में ज्वर दिया—बड़े हकीम नहीं, धन्वनरि भी आवे, तो भी उसे को फायदा न होगा ।

सुखदा ने कहा—तो क्या अब किसी की दवा ही न होगी ।

इन्द्रमणि—वम, इसकी एक ही दवा है और वह अलभ्य है ।

सुखदा—तुम्हें तो वम, वही धुन मवार है । क्या बुद्धि आकर अमृत पिला देगी ?

इन्द्रमणि—वह तुम्हारे लिए चाहें विष हो, पर लडके के लिए अमृत ही होगी ।

सुखदा—मैं नहीं समझती कि ईश्वरेन्द्रा उसके अधीन है ।

इन्द्रमणि—यदि नहीं समझती हो और अब तक नहीं समझा तो रोओगी । वस्त्र से हाथ धोना पड़ेगा ।

सुखदा—चुप भी रहो, क्या अशुभ मुँह से निकलत है । यदि ऐसी-ही जली-पटी सुनाना है, तो बाहर चले जाओ ।

इन्द्रमणि—तो मैं जाना हूँ पर याद रखो, यह हत्या तुम्हारे ही गर्दन पर होगी । यदि लडके को तन्दुरुस्त देखना चाहती हो, तो उसी दाई के पास जाओ, उससे विनती और प्रार्थना करो समा माँगो । तुम्हारे वस्त्र की जान उसी की दवा के अधीन है ।

सुखदा ने कुछ उत्तर नहीं दिया । उसकी आँखों से आँसू जारी थे ।

इन्द्रमणि ने पूछा—क्या मर्जी है, जाऊँ उसे बुला लाऊँ ।

सुखदा—तुम क्यों जाओगे, मैं आप चली जाऊँगी ।

इन्द्रमणि - नारा नमो करो । मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं है । न जाने तुम्हारी योजना में क्या निहित है कि जो यह पानी भी हो, नो न जाये ।

सुखदा ने पनि री ओर फिर निरङ्कार की दृष्टि से देखा और बोली— हाँ, और क्या मुझे अपने बन्धे की बीमारी का मोर थोड़े ही है । मैंने लाज से मारे तुम से कहा नहीं, पर मेरे हृदय में यह बात बार-बार उठी है । यदि मुझे दास के मतान का पता मान्नुम होना, तो मैं कभी भी उसे मना लाई होती । वह मुझ से किनारी ही नागल हो, पर रुद्र से उसे प्रेम था । आज ही उसके पास जाऊँगी । तुम बिनती करने को रहते हो, मैं उसके पैरों पड़ने के लिए तैयार हूँ । उसके पैरों को आसुओं से भिगेऊँगी और जिस तरह राजी होगी राजी करूँगी ।

सुखदा ने बहुत धैर्य धर कर यह बातें कहीं, परन्तु उनड़े हुए आसू अब न रुक सक । इन्द्रमणि ने स्त्री को ओर सहानुभूति-पूर्वक देखा और लज्जित हो बोले मैं तुम्हारा जाना उचित नहीं समझता मैं खुद ही जाता हूँ ।

२

केलाम्बी समार में अकला था किन्ता समय उसका पारवार गुलाब की तरह फूल हुआ था परन्तु पीर-पीर उसकी सब पानियाँ गिर गई । उसकी सब हरियाली नष्ट-भ्रष्ट हो गयी और अब बचा एक सूखी हुई टहनी उस हर-भर पड़ का चिह्न रह गई थी ।

परन्तु रुद्र को पाकर इस सृष्टी हुई टहनी में जान पड़ गई

इन्द्रमणि ने काली घटाओं की ओर देग कर मगई न कर दिया—बड़े हकीम नहीं, धन्तनरि भी आगे, सो भी उसे भी फायदा न होगा ।

सुखदा ने कहा—तो क्या अब किसी की दवा ही न होगी ?

इन्द्रमणि—बस, उसकी एक ही दवा है और वह अलम्ब है ।

सुखदा—तुम्हें तो बस, बड़ी धुन मवार है । क्या बुद्धि आकर अमृत पिला देगी ?

इन्द्रमणि—वह तुम्हारे लिए चाहें विष हो, पर लडक = नि अमृत ही होगी ।

सुखदा—मैं नहीं समझती कि ईश्वरेंद्रा उसक अधीन है ।

इन्द्रमणि—यदि नहीं समझती हो और अब तक नहीं समझ तो रोओगी । बच्चे से हाथ धोना पड़ेगा ।

सुखदा—चुप भी रहो, क्या अशुभ मुँह में निकलत हो । यदि ऐसी-ही जली-कटी सुनाना है, तो बाहर चले जाओ ।

इन्द्रमणि—तो मैं जाना हूँ पर याद रखो, यह हत्या तुम्हारी ही • रैन पर होगी । यदि लडक को नन्दुकम्पन देखना चाहता हो तो उसी दार के पास जाओ, उसमें बिनती आर प्रार्थना करो क्षमा माँगो । तुम्हारे बच्चे की जान उसी की दवा के अधीन है ।

सुखदा ने कुछ उत्तर नहीं दिया । उसकी आँखों से आँसू जारी थे ।

इन्द्रमणि ने पूछा—क्या मर्जी है, जाऊँ उसे बुला लाऊँ ?

सुखदा—तुम क्यों जाओगे, मैं आप चली जाऊँगी ।





इन्द्रमणि ने काली घटाओं की ओर देग कर मगई से बर दिया—बड़े हकीम नहीं, भन्वनरि भी आने, तो भी उसे जो फायदा न होगा ।

सुखदा ने कहा—तो क्या अब किसी की दवा ही न होगी

इन्द्रमणि—बस, इसकी एक ही दवा है और वह अल्प है

सुखदा—तुम्हें तो बस, नही भुन गवार है । क्या बुद्धि आकर अमृत पिला देगी ?

इन्द्रमणि—वह तुम्हारे लिए चाहें विष हो, पर लडक रुनि अमृत ही होगी ।

सुखदा—मैं नहीं समझती कि डेवरेन्द्रा उसक अधीन है

इन्द्रमणि—यदि नहीं समझती हो और अब तरु नहीं समझें तो रोओगी । बच्चे से हाथ धोना पड़ेगा ।

सुखदा—चुप भी रहो, क्या अशुभ मुँह में निकलत हो यदि ऐसी-ही जली-रटी मनुना ह, तो बाहर चले जाओ ।

इन्द्रमणि—तो मैं जाना हूँ पर याद रखो, यह हत्या तुम्हारी ही रैन पर होगी । यदि लडक को नन्दुरुम्न देखना चाहता है तो—मी दाटे के पास जाओ, उसमें बिनती आर प्रार्थना करें क्षमा माँगो । तुम्हारे बच्चे की जान उसी की दया के अधीन है

सुखदा ने कुछ उत्तर नहीं दिया । उसकी आँखों से आँसू जारी थे ।

इन्द्रमणि ने पूछा—क्या मर्जी है, जाऊँ उसे बुला लाऊँ

सुखदा—तुम क्यों जाओगे, मैं आप चली जाऊँगी ।



थी। इसमें हरी-हरी पत्तियाँ निकल आई थीं। वह जीव, जो अब तक नीरस और मृदा था, अब गरम और सजीव हो गया। अंधेरे जंगल में भटकते हुए पशु तो प्रकाश की झलक ढूँढने लगे थे। अब उसका जीवन निर्गन्ध नहीं, बल्कि सार्वभौम हो गया था।

कैलासी रुद्र-की भोली-भोली बातों पर निश्चय हो गईं। वह अपना स्नेह मुखड़ा में छिपानी थी। इसलिए कि माँ के दृष्टि में द्वेष न हो। वह रुद्र के लिए माँ से छिपकर मिठाइयाँ लाती और उसे खिलाकर प्रसन्न होती। वह दिन में दो-न न बार उसे उधर मलती कि बच्चा खूब पुष्ट हो। वह दूसरों के सामने उसे कोई चीज नहीं खिलाती कि उसे नजर लग जायगी। मदा वह दूसरों से बच्चे के अल्पाहार का रोना रोया करती। उसे बुरी नजर से बचने के लिए तारीज़ और गङ्गे लानी रहती। वह उसका विगुद्ध प्रेमी था। उसमें स्वाधे की गन्ध भी न थी।

उस घर में निकलकर आज कैलासी की वह दशा थी, जो थियेटर में एकाएक बिजली के तन्पों के वृक्ष ज्ञान से दर्शकों की होती है। उसका सामन बड़ी मृगत नाच रही थी। कानों में बड़ी प्यारी-प्यारी बाने गूँज रही थी। उसे अपना घर काटे जाना था। उस कालकोठरी में दम घुटा जाना था।

रात ज्यों-त्यों कर कटी। सुबह को वह घर में झाँक लगा रखी थी। एकाएक बाहर नाजे हलुव की आवाज सुनकर बड़ी फुर्ती से घर से बाहर निकल आई। वह नरु याद आ गया, आज हलुव



यात्रा का समय आ गया। माल्ले के कुछ लोग यात्रा की तैयारी करना शुरू कर देने लगे। कैलासी की दगा इस समय उस पालतू बिड़ड़ की-सी थी, जो पिंजड़े में निरलकर फिर किसी कोने की लोखंड में हो। उसे विन्मृति का यह अच्छा अवसर मिल गया, यात्रा के लिए तैयार हो गई।

६

आसमान पर काली घटाएँ झाड़े हुई थीं और हल्की-झुंझुं पड़ रही थीं। देहली स्टेशन पर यात्रियों की भीड़ थी। गाड़ियों पर बैठे थे, कुछ अपने घरवालों से बिदा हो रहे थे। बगैर नरफ एक ठलचल-सी मची थी। संसार-माया आज भी उन्हें जकड़े हुए थी। कोई स्त्री को माचवान कर रहा था कि धातु का जावे तो नालाबवाले खेत में मटर बो देना और बाग के पक्ष में रहें। कोई अपने जवान लड़के को समझा रहा था—अमानि पर बकाया लगान की नालिश करने में डर न करना और दो रुपये में रुकड़ा मटर जल्द काट लेना। एक बृद्ध व्यापारी महाशय अपने मुनीम से कह रहे थे कि माल आने में डर हो, तो खुद चले जाएंगे, और चलते माल लीजियेगा नहीं तो रुपया फँस जायगा। पर कोई-कोई ऐसे श्रद्धालु मनुष्य भी थे जो ध्यानमग्न दिखाई देते थे। वे या तो चुपचाप आसमान की ओर निहार रहे थे, या मातल फेरने में तल्लीन थे। कैलासी भी एक गाड़ी में घड़ी मोच रही थी—उन भले आदमियों को अब भी संसार की चिन्ता नहीं छोड़ती। वही वनिज-व्यापार, वही लेन-देन की चर्चा। रुद्र इस सत्त



अब एक दृष्टि से खांसी और बुखार में पड़ा है । मर्ग करके हार गया, कुछ शायदा नहीं हुआ । मैंने सोचा था कि अगर तुम्हारी अनुनय-विनय करके लिवा आऊँगा । क्या उम्मेद देकर उसकी दवायन मैंमल जाय, पर तुम्हारे घर गया । मान्नुम हुआ कि तुम यात्रा करने जा रही हो । अब किन कुँ चलने को कहूँ । तुम्हारे साथ मन्तूक ही कौन-सा अच्छा नि जो इतना माहम कहूँ । फिर पुण्य-कार्य में विघ्न डालने का हर है । जाओ, उसका डेवर मालिक है । आयु गेप है तो जायगा । अन्यथा ईश्वरीय गति में किसी का क्या बग !

कैलासी की आँखों के सामने आँधरा छा गया । मान्नुम चीनें तैरती हुई मान्नुम होने लगी । हृदय भावी अनुम की कर ने दहल गया । हृदय से निकल पड़ा—या ईश्वर, मेरे नर वाल वाका न हो । प्रेम ने गला भर आया । विचार किया कि केंसी कटोरहृदया हूँ । प्याग बचा रो-रोकर हलकान हो गया मैं उसे दखन तक नहीं गई । मुन्वदा का स्वभाव अच्छा नहीं, मही, किन्तु न्द्र न मेरा क्या बिगाडा था कि मैंने माँ का बंटे से लिया । ईश्वर मेरा अपराध जमा कर । प्याग न्द्र लिये हुडक रहा है ( इस स्थान में कैलासी का कलेजा न्द्र उठा था और आँखा में आँसु बह निकले थे ) मुझे क्या माहूम कि उस मुक्तने इतना प्रन है नहीं मान्नुम बच्चे की क्या दगा है भयातुर हो बोली—दूध तो पीने है न ?

इन्द्रमणि—तुम दूध पीन का कहती हो, उमने तो दो दिन





कैलासी को ज़रा ढाढ़स हुआ। घर में पैठी, तो देखा कि नई दाई पुलटिस पका रही है ? हृदय में बल का संचार हुआ। सुखदा के कमरे में गई, तो उसका हृदय गर्मी के मध्याह्नकाल के सदृश काँप रहा था। सुखदा रुद्र को गोद में लिये दरवाजे की ओर एकटक ताक रही थी। वह शोक और कर्मणा की मूर्ति बनी हुई थी।

कैलासी ने सुखदा से कुछ नहीं पूछा। रुद्र को उसकी गोद से ले लिया और उसकी तरफ सजल नयनों से देख कर कहा—बेटा रुद्र ! आँखें खोलो ।

रुद्र ने आँखें खोलीं। क्षणभर दाई को चुपचाप देखता रहा और तब एकाएक दाई के गले से लिपट कर बोला—अन्ना आई ! अन्ना आई ॥

रुद्र का पीला, मुर्झाया हुआ चेहरा खिल उठा, जैसे बुझते हुए दीपक में तेल पड़ जाय। ऐसा मालूम हुआ मानो यह कुछ बढ़ गया हो।

एक हफ्ता बीत गया। प्रातः काल का समय था। रुद्र आँगन में खेल रहा था। इन्द्रमणि ने बाहर से आकर उसे गोद में उठा लिया और प्यार से बोले—तुम्हारी अन्ना को मार कर भगा दे।

रुद्र ने मुँह बना कर कहा—नहीं, रोयेगी।

कैलासी बोली—क्यों बेटा, तुमने तो मुझे बट्टीनाथ नहीं जाने दिया। मेरी यात्रा का पुण्य फल कौन देगा ?

इन्द्रमणि ने मुस्कुराकर कहा—तुम्हें उनसे कहीं अधिक पुण्य हो गया। यह तीर्थ,

महार्थ है ।



कैलासी को जरा ढाढ़स हुआ । घर में  
पुलटिस पका रही है ? हृदय में बल  
कमरे में गई, तो उसका हृदय गर्मी  
रहा था । सुखदा रुद्र को गोद में  
ताक रही थी । वह शोक और

कैलासी ने सुखदा से कुछ  
ले लिया और उसकी तरफ  
रुद्र ! आँखें खोलो ।

रुद्र ने आँखें खोलीं ।  
और तब एकाएक दाई के  
अन्ना आई !!

रुद्र का पीला, मुर्झाया  
द्वीपर मे तेल पड़ जाय । ऐम्

एक हफ्ता बीत गया ।  
में ज्वल रहा था । इन्द्रमणि ने  
लिया बार बार से बोले—तुम्हें

रुद्र न मुँह बना कर कहा—

कैलासी बान्नी - क्या बेटा, तुम  
दिया । मरी यात्रा का पुण्य फल कौन

इन्द्रमणि ने मुष्कुराकर कहा—तुम्हें  
हा गया । यह तीर्थ

महातार्थ है !



छाया-भर के लिए अनुगम ने दवा दिया था, फिर ज्वलन्त हो गई। वह उलटे पाँव लौटा और यह कह कर बाहर चला गया कि सारन्धा, तुमने मुझे मर्दव के लिए मर्चन कर दिया। यह बात मुझे कभी न भूलेगी।

अंधेरी रात थी। आकाश-मण्डल में तारों का प्रकाश बहुत धुँधला था। अनिरुद्ध किले से बाहर निकला। पलभर में नदी के उस पार जा पहुँचा, और फिर अन्धकार में लुप्त हो गया। जीतना उसके पीछे-पीछे किले की दीवारों तक आई, मगर जब अनिरुद्ध छलांग मारकर बाहर कूद पड़ा, तो वह विरहिणी एक चट्टान पर बैठकर रोने लगी।

इनने में सारन्धा भी वहीं आ पहुँची। जीतना ने नागिन की तरह बल खाकर कहा—मर्यादा इतनी प्यारी है ?

सारन्धा—हाँ।

शीतला—अपना पति होना तो इन्द्र में छिपा लेनी।

सारन्धा—न, छानी में लुगी चुभा दनी।

शीतला ने ऐंठकर कहा—छाली में छिपाता फिरेगी, मेरी बात गिरह में बाँध लो।

सारन्धा—जिस दिन ऐसा होगा मैं भी अपना वचन पूरा कर दिखाऊँगी।

इस घटना के तीन महीने पीछे अनिरुद्ध मदर्शन को जीत कर लौटा और साल-भर पीछे सारन्धा का विवाह ओरछा के राजा चम्पतराय से हो गया। मगर उस दिन की बातें दोनों सड़ि-



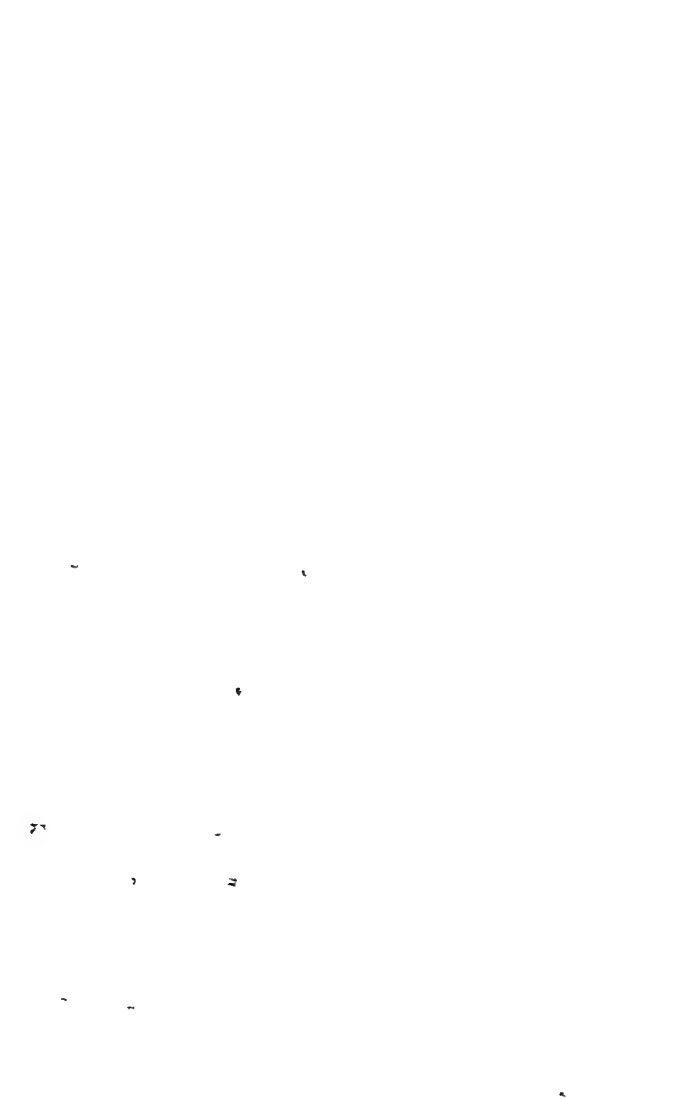
लाग थी। यह पहला आगर था कि चम्पतराय को आगे-दिन के लड़ाई-झगड़ों से निवृत्ति मिली और उसके साथ ही भोग-विलास का प्राबल्य हुआ। रात-दिन आमोद-प्रमोद की चला रहने लगी। राजा विलास में पड़े, रानियाँ जडाऊ गहनों पर रीझीं। मगर मारन्या इन दिनों बहुत उदास और संकुचित रही। वह इन रंगरतियों से दूर-दूर रहती। ये नृत्य और गान की मन्त्र उसे सूनी प्रतीत होतीं।

एक दिन चम्पतराय ने मारन्या से कहा—सागन, तुम उदास क्यों रहती हो ? मैं तुम्हें कभी हँसते नहीं देखता। क्या मुझसे नाराज हो ?

मारन्या की आँखों में जल भर आया। बोली—नाथ ! आप ऐसा विचार क्यों करते हैं ? नहीं आप प्रसन्न हैं, वहाँ मैं भी खुश हूँ।

चम्पतराय—मैं जब स यहाँ आया हूँ मैंने तुम्हारे मुख-कमल पर कभी मनोहासिणी मुसकिराहट नहीं देखी। तुमने कभी अपने हाथों से मुझे ब्रीडा नहीं खिलाया। कभी मेरी पाग नहीं सँवारी। कभी मेरे शरीर पर शस्त्र नहीं मचाये। कहाँ प्रेम-लता मुरझाने लगी ?

मारन्या—प्राणनाथ ! आप मुझसे ऐसी बात पूछते हैं जिसका उत्तर मेरे पास नहीं है। यथार्थ मैं इन दिनों मेरा वित्त कुछ उदास रहता है। मैं बहुत चाहती हूँ कि खुश रहूँ, मगर एक बोझ-सा हृदय पर धरा रहता है।





## ४

माँ अपने खोये हुए बालक को पाकर निहाल हो जाती है। चम्पतराय के आने से बुन्देलखण्ड निहाल हो गया। ओरछा के भाग जागे। नौवतें फड़ने लगीं और फिर सारन्या के नेत्र-कमलों में जातीय अभिमान का आभास दिखलाई देने लगा।

यहाँ रहते कई महीने बीत गये। इसी महीने में शाहजादा बीमार पड़ा। शाहजादाओं में पहले से ईर्ष्या की अग्नि दहक रही थी। यह खबर सुनते ही ज्वाला प्रचण्ड हुई। संग्राम की तैयारियाँ होने लगीं। शाहजादा मुराद और मुहीउद्दीन अपने-अपने दर सजा कर दक्खिन से चले। वर्षा के दिन थे। उर्वरा भूमि रंग-धिरंगे रूप भरकर अपने सौन्दर्य को दिखानी थी।

मुराद और मुहीउद्दीन (औरंगजेब) उमंग से भरे हुए कदम बढ़ाते चले आते थे। यहाँ तक कि वे धौलपुर के निकट, चम्बल के तट पर आ पहुँचे, परन्तु यहाँ उन्होंने बादशाही सेना को अपने शुभागमन के निमित्त तैयार पाया।

शाहजादे अब बड़ी चिन्ता में पड़े। सामने अगम्य नदी लहरें मार रही थी, लोभ में भी अधिक विम्पार वाली। घाट पर लोंछे की दीवार खड़ी थी, किसी योगी के त्याग के मद्दश सुन्दर। विवर होकर उन्होंने चम्पतराय के पास मद्दशा भेजा कि खुदा के लिए आकर हमारी इयती हुई नाव को पार लगाइए।

राजा ने भवन में जाकर सारन्या से पूछा—इसका क्या उत्तर दें।

चम्पतराय स्वयं आनन्द से मग्न थे । इसलिए उनके विचार में नारन्या के अनन्तुष्ट रहने का कोई उचित कारण नहीं हो सकता था । वह भी हैं मित्रोड़कर बोले—मुझे तुम्हारे उदास रहने का कोई विशेष कारण नहीं मालूम होता । ओरछे में कौन-सा सुख था, जो यहाँ नहीं है ?

नारन्या का चेहरा लाल हो गया । बोली—मैं कुछ कहूँ, आप नाराज तो न होंगे ?

चम्पतराय—नहीं, शौक से कहो ।

नारन्या—ओरछा में मैं एक राजा की रानी थी, यहाँ मैं एक जागीरदार की चेरी हूँ । ओरछा में मैं वह थी, जो अवध में कौशल्या थी । परन्तु यहाँ मैं बादशाह के एक सेवक की स्त्री हूँ । जिस बादशाह के सामने आज आप आदर से सिर झुकाते हैं, वह कल तक आपके नाम से काँपता था । रानी से चेरी होकर भी प्रमत्त-चित्त होना मेरे वश में नहीं है । आपने यह पद और ये विलास की सामग्रियाँ बड़े मँदगे दामों में मोल ली हैं ।

चम्पतराय व नन्नो से एक पर्दा-मा हट गया । वे अब तक नारन्या की आन्तिक उन्नता को न जानत थे । जैसे बे-मा-बाप का बालक माँ की चचा सुनकर रोने लगता है, उसी तरह ओरछा की याद से चम्पतराय की आँखें मज्जन हो गईं । उन्होंने आदर-युक्त अनुराग व साथ नारन्या को हृदय से लगा लिया ।

आज से उन्हें फिर उसी उजड़ी बस्ती की फिक्र हुई, जहाँ से धन और कीर्ति की अभिलाषाएँ उन्हें यहाँ खींच लाई थीं ।











दिल्ली की सभा-सभा में विचार-प्रार्थना करने की, तथापि प्रायः सभी  
 ही विचार में ही समाप्त हो जाती हैं। अतः वह प्रत्यक्ष-दर्शन  
 सेनापति साहू की नीचे लाता है। तो वह ध्यान पर जान देनेवाला,  
 वह सैना न सोचने वाला निराशी साहू के भावों को उद्यत करता है।  
 उसे कार्यक्षेत्र में जाने से रोकता न हो, किन्तु जब किसी भाषणा या  
 सभा में उसका नाम ध्यान पर आ जाता है, तो श्रीनागना एक  
 स्वर से चमक, पीरि-गौरव को प्रतिध्वनित कर देते हैं। सारन्या  
 इन्हीं 'ध्यान पर जान देनेवालों' में थी।

शाहजादा मुहीउद्दीन बख्त के दिनों में 'आगरा' की ओर  
 चला, तो सौभाग्य उसके सिर पर चैवर दिलाता था। जब वह  
 आगरा पहुँचा, तो विजयदेवी ने उसका लिए सितामन सजा दिया।

आगराजेंद्र गुगल था। चम्पन बादशाही सरदारों के अपराध  
 क्षमा कर दिये। उनका राज्य-पद लाटा दिया और राजा चम्पनराय  
 को उसका बहुमूल्य स्वर्ण वस्त्र-समूह प्रदान किया। आगरा में चम्पन ने आगरा प्रताप से यमुना तक  
 उसकी जागीर नियत की। उसका राज्य-सर्वकार  
 बना वह पुनः सुख-विलास में प्रवेश करने लगा। सारन्या एक बार  
 और पराधीनता के शास्त्र में पुनर्जन्म लगी।

बलीवहादुरों बड़ा वाक्यचतुर व्यक्ति था। उसकी मृदुलता  
 ने शीघ्र ही उसे बादशाह आलमगोर का विश्वासपात्र बना दिया।

उस पर राज-सभा में सम्मान का नष्ट पड़ने लगी।

सौसाहब के मन में अपने धाड़ के हाथ से निकल जात का









बुन्देला बादशाह का मूवेदार था। वह चम्पतराय का बचपन का मित्र और सहाठी था। उसने चम्पतराय को परास्त करने का बीड़ा उठाया और भी किनने ही बुन्देला सरदार राजा से विमुख होकर बादशाही मूवेदार से आ मिले। एक घोर संग्राम हुआ। भाइयों की नलवारे रक्त से लाल हुई। यद्यपि इस युद्ध में राजा को विजय प्राप्त हुई, लेकिन उनकी शक्ति सदा के लिए क्षीण हो गई। निकटवर्ती बुन्देला राजा, जो चम्पतराय के बाहु-बल थे, बादशाह के कृपाकाली बन बैठे। साथियों में कुछ तो काम आये, कुछ दगा कर गये। यहाँ तक कि निज सम्बन्धियों ने भी आँखें चुग लीं। परन्तु इन कठिनाइयों में भी चम्पतराय ने हिम्मत नहीं हारी। धीरज को न छोड़ा। उन्होंने प्रेरणा छोड़ दिया, और तीन वर्ष तक बुन्देलखण्ड के स्वतन्त्र पर्वतों पर छिपे फिरते रहे। बादशाही सेनाएँ शिकारी जानवरों की भाँति मारे देश में भँडरा रही थीं। आये-दिन राजा का किमी-न किमी से सामना हो जाता था। मारन्था मदैव उनका साथ रहने और उनका साहस बढ़ाया करता। बड़ी-बड़ा आपत्तियाँ न भूँ जब तक ये लुप्त हो जाता -- और आशा साथ छोड़ उनका कामसरज का धर्म उसे सन्ताने रहता था। तीन साल के बाद अन्त में बादशाह के मूवेदारों ने आलमगीर को सूचना दी कि इस देश का शिकार आपका निवाय और किमी से न होगा। उत्तर आया कि सत्ता को हटा लो और घेरा उठा लो। राजा ने समझा मड़ुट से निवृत्ति हुई पर यह बात शीघ्र ही भ्रमात्मक सिद्ध हो गई।



## रानी सारन्धा

रानी सारन्या  
सारन्या—हम लोग यहाँ से निकल जाये तो कैसा ?  
...को छोड़कर ?

राजा—इन प्रनाथों को छोड़कर ?

सारन्धा—इस समय इन्हे छोड़ देने ही में कुशल है। हम न  
होंगे, तो शत्रु इन पर कुछ दया अवश्य ही करेंगे। जिन म  
होंगे, तो शत्रु इन पर कुछ दया अवश्य ही करेंगे। जिन म

सारन्ध्या—इस समय इन्हें छोड़ देंगे, तो शत्रु इन पर कुछ दया अवश्य ही करेंगे ।

राजा—नहीं, यह लोग मुझसे न छोड़े जायेंगे । जिन मर्दों ने अपनी जान हमारी सेवा में अर्पण कर दी है, उनकी ब्रियों और वच्चों को मैं कदापि नहीं छोड़ सकता ।

लेकिन यहाँ रहकर हम उनकी कुछ मदद भी तो

ने अपनी जान हमारी सेवा में  
और दूबों को मैं कदापि नहीं छोड़ सकता।  
सारन्या—लेकिन यहाँ रहकर हम उनकी कुछ मदद भी तो  
नहीं कर सकते।

सारन्या—लेकिन यहाँ रहकर  
 नहीं कर सकते ।  
 राजा—उनके साथ प्राण तो दे सकते हैं ? मैं उनकी रक्षा में  
 अपनी जान लड़ा दूँगा । उनके लिए वादनाडो मेरा ही ब्याम  
 कहेगा । कारावास की कठिनाइयों में मैं किन्तु इस मरु में  
 उन्हें छोड़ नहीं सकूँ ।

कहूँगा। कारावास की कठोरता उन्हें छोड़ नहीं सकता।  
मारन्या ने ललित होकर फिर भुक्तियाँ और सोचने लगी  
निस्तब्ध रूप से अपने दिव्य सन्धि के साथ ही ध्यान में लोड कर  
अपनी जान बचाना पर न उन के मन में स्वयं का ही  
गई है। लेकिन फिर एक बार विचार : "यदि मैं  
आपको विश्राम हो न दूँ तो मैं स्वयं को नष्ट कर दूँगी।"  
"अन्याय न किया जाय" मैंने कहा।  
होगी ?

राजा सोचकर केन विष्णुन भजन करे  
सारन्धा वादशाह य सन न त के एनिद्र-पत्र



“क्या नामों परमात्मा तुम्हारा मनोरथ पूरा करे।”

द्वित्रिंशत् वर्ष चली तो रानी ने उसे हृदय में लगा लिया और तब आश्रम की ओर दोनों हाथ उठाकर कहा—दयानिधि, मैंने अपना तन्मा और लेनहार पुत्र दुन्देलो की आन के आगे भेंट कर दिया। अब इस आन को निभाना तुम्हारा काम है। मैंने बड़ी मूल्यवान् वस्तु अर्पित की है। इसे स्वीकार करो !

८

दूसरे दिन प्रातःकाल सारन्धा स्नान करके थाल में पूजा की सामग्री लिये मन्दिर की चली। उसका चेहरा पीला पड़ गया था, और आँखों-तले आँधेरा छाया जाता था। वह मन्दिर के द्वार पर पहुँची थी कि उसके थाल में बाहर से आकर एक तीर गिरा। तीर की नोक पर एक कागज का पुर्जा लिपटा हुआ था। सारन्धा ने थाल मन्दिर के चबूतरों पर रख दिया और पुर्जे को खोलकर देखा, तो आनन्द से चेहरा खिलता लेकिन यह आनन्द जगाम-भर का मेहमान था। हाथ इस पुर्जा के लिए मैंने अपना सब से प्यारा पुत्र हाथ न खो दिया है। कागज के दुन्देलो को इनमें मैंने दामो में और किसने लिया होगा।

मन्दिर से लौटकर सारन्धा राजा चम्पनराय के पास गई और बोली—प्राणनाथ ! आपन जो वचन दिया था उसे पूरा कीजिए।

राजा ने चौंककर पूछा—तुमने अपना बाढ़ा पूरा कर लिया ? रानी ने वह प्रतिज्ञा-पत्र राजा को दे दिया। चम्पनराय ने उसे गौरव से देखा, फिर बोले—अब मैं चलूँगा और ईश्वर ने चाहा, तो









कोमल शरीर में हाथ लगायेगे तौंग में जगल में हिल भी न सँगा। हाथ ! मृत्यु, नू कब पायेगी। यह जाते-मरने उन्हे एक विचार आया। तलवार की नरक हाथ दटाया, मगर हाथों में दम न था। तब सारन्धा ने बोले—प्रिये ! तुमने जितने ही स्वमरो पर मेरी आन निर्भार है।

इतना सुनते ही सारन्धा ने सुरक्षाये हुए मुख पर लाली डोंड गई आँसू मूक गये। इस आशा ने कि मैं अब भी पति के कुछ काम आ सकती हूँ, उनके हृदय में बल का संचार कर दिया। वह राजा की ओर विश्वासोत्पादक भाव से देखकर बोली—ईश्वर ने चाहा, तो मरते दम तक निराहूँगी।

रानी ने समझा राजा मुझे प्राण द देने का संकेत कर रहे हैं।

चम्पतराय—तुमन मेरी बात कभी नहीं टाली।

सारन्धा—मरते दम तक न डरूँगी

'यह मेरा अन्तिम वाचन है इस आस्था के न करना

सारन्धा ने तलवार नश्वर कर उस अपन वज्र स्थल पर रख लिया और कहा—यह अन्तिम वाचन नहीं है मेरा आदिक अभिलाषा है कि मरते ही यह मन्त्रक के पत्र चरण-कमला पर हो

चम्पतराय—तुमन मर मनलव नहीं समझा क्या तुम मुझ इसलिए शत्रुओं के हाथ में जाडू जाडूंगा कि मेरे बाडिया पहन हुए दिल्ली की गलियों में निन्दक के पात्र बनें

रानी ने जिज्ञासा-दृष्टि से राजा को देखी। वह उनके मनलव नहीं समझी।



















जी नहीं चाहता !

रत्नसिंह ने इस सरल, अनुरक्त आग्रह से विह्वल होकर चिन्ता को गले लगा लिया, और बोले—मैं सवेरे तक लौट आऊँगा प्रिये ।

चिन्ता पति के गले में हाथ डालकर आँखों में आँसू भरे हुए बोली—मुझे भय है, तुम बहुत दिनों में लौटोगे । मेरा मन तुम्हारे साथ रहेगा । जाओ, पर रोज खबर भेजते रहना । तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, अवसर का विचार करके धावा करना । तुम्हारी आदत है कि शत्रु को देखते ही आकुल हो जाते हो और जान पर खेलकर दूट पड़ते हो । तुमसे मेरा यही अनुरोध है कि अवसर देखकर काम करना । जाओ, जिस तरह पीठ दिखाते हो, उसी तरह मुँह भी दिगाओ ।

चिन्ता का हृदय कानर हो रहा था । वहाँ पहले केवल विजय-लालमा का आधिपत्य था, अब भोग-लालमा की प्रधानता थी । वही वीर-बाला, जा सिंहनी की तरह गरज कर शत्रुओं के कलेजे कँपा दती थी, आज इतनी दुर्बल हो रही थी कि जब रत्नसिंह घोंड़ पर सवार हुआ, ना आप उसकी कुशल-कामना से मन-ही-मन देवी की मनोनियाँ कर रही थी । जब तक वह वृद्धों की ओट

छिप न गया, वह खड़ी उस देखती रही । फिर वह किले के मर

चे बुर्ज पर चढ़ गई और घण्टा उसी तरफ ताकती रही ।

शून्य था, पहाड़िया न कभी का रत्नसिंह को अपनी ओट में छिपा लिया था, पर चिन्ता को ऐसा जान पड़ता था कि वह सामने

















चिन्ता पर वज्रपात हो गया। एक क्षण तक समोहन-सी बैठ रही। फिर उठकर घबराई हुई सैनिक के पास आई, और आवाज में पूछा—कौन-कौन वचा ?

सैनिक ने कहा—कोई नहीं।

“कोई नहीं !, कोई नहीं !!”

चिन्ता फिर पकड़ कर भूमि पर बैठ गई। सैनिक ने फिर कहा—“मरहट्टे समीप आ पहुँचे।”

“समीप आ पहुँचे !!”

“बहुत समीप।”

“ना तुरन्त चिन्ता तैयार करो। समय नहीं है।”

“अभी हम लोग तो फिर रुटाने को हाजिर ही हैं।”

“तुम्हारी जैसी इच्छा। मेरे कर्तव्य का तो यही अन्त है।

“किन्ता वन्द करके हम मरीनों लड़ सकते हैं।”

“ना जाकर लड़ा। मरी लड़ डे अब किसी से नहीं।”

एक ओर अन्धकार प्रकाश का पैरो-तले कुचलता चला आया, दूसरा आग विनयी मरहट्टे लहराने हुए खेतों को। और इस कितने सन्ध्या के अन्त में आया हो दीपक जले, चिन्ता में ही आग लगी। अन्त में चिन्ता मालिका शृंगार किए अनुपम उर्ध्व दिव्याना दृष्टि समस्त मनुष्य अंग सग स पतिलोक की यात्रा करने ला रही थी।



























को अवरुद्ध कंठ में बोला - नहीं, नहीं, जरूरीगत ही रखा करके ही पड़ेगी। 'आह' ज़ालिम ! न जानता है, मैं लौट हूँ ? मैं उसी युवक का प्रभागा पिता हूँ, जिसकी आज तुम्हें उसी निर्दयता से हत्या की है। नू जानता है, तुम्हें मुक्त पर स्मिता बड़ा अन्धकार किया है ? तुम्हें मेरे गानदान का निशान मिटा दिया है। मेरा चिराग गुल कर दिया। 'आह, जमान मेरा एकलौता बेटा था। मेरी मांगी अभिलाषाएँ उसी पर निर्भर थीं। वही मेरी आँखों का उजाला, मुक्त अंधे का नशा, मेरे जीवन का आधार, मैं जर्जर शरीर का प्राण था। अभी-अभी उसे कत्र की गोद में लिटाकर आया हूँ। 'आह, मेरा जंग आज खान के नीचे मोटा है। ऐसा दिलेर, ऐसा दोनदार ऐसा मजीला जवान मेरी कान में दमरा न था। ज़ालिम तुम्हें उस पर नलवार चलाने जरा भी डर न आई। मेरा पत्थर का स्नेहा जरा भी न पसीजा। तू जानता है, मुझे उस वक्त तुम्हें पर स्मिता गुस्सा आ रहा है ? मेरा जे चाहता है कि अपन दोना हाथों में नगी गदन पकड़कर इस तरह दवाई कि नगी जवान बाहर निरुक्त आव नगी आँखें कौड़ियों की तरह बाहर निरुक्त पड़े पर नहा नून मरी शरणा ली है कर्मज मेरे हाथों को बाँधे हुए है क्योंकि हमारे रमूल-पाक ने हिदायत की है कि जो अपनी पनाह में आव उन पर हाथ न उठाओ। मैं नहीं चाहता कि नगी क हुक्म को नोडकर दुनिया के साथ अपनी आकयत भी बिगाड़ लूँ। दुनिया तुम्हें बिगाड़ी, दोन अपने हाथों बिगाड़ें ? नहीं। सत्र करना मुश्किल है, पर सत्र करूँगा।



फे-कूचीले मर मिटने दो, शस्त्र-के शस्त्र बीगान हो जाते हैं। प्रवृत्ति पर विजय पाना, जेम्स हसन को अमात्य-सा प्रतीत हो गया। बार-बार प्यारे पुत्र की मूर्त उसकी आँखों के आगे फिर लगनी थी, बार-बार उसके मन में प्रयत्न उनेजना होती थी कि चलकर दाऊद के नून से अपने शौर की आग बुझाऊँ। अरब वीर होते थे। काटना-मारना उनके लिए कोई आमायाग नहीं था। मरनेवालों के लिए वे आँसुओं की टुट्टू बूँदें बहाकर फिर अपने काम में प्रवृत्त हो जाते थे। वे मृत व्यक्ति की स्मृति को केवल उम्मीदशा में जीविन रखते थे, जब उस के नून के बदला लेना होना था। अन्त को जेम्स हसन अधीर हो उठा। उसको भय हुआ कि अब मैं अपने ऊपर कायू नहीं रख सकता। उसने तलवार म्यान में निकाल ली और दबे पाँव उस छोटी के द्वार पर आकर खड़ा हो गया जिसमें दाऊद छिपा हुआ था। तलवार को दामन में छिपाकर उसने वीरों में द्वार खोला। दाऊद टहल रहा था। बूढ़े अरब का गद्गद रूप देखकर दाऊद उसके मनोवेग को ताड गया। उसे बूढ़े में महानुभूति हो गई। उसने सोचा, यह धर्म का दोष नहीं। मेरे पुत्र की किमी ने हत्या की होती, तो कदाचित् मैं भी उसके नून का प्यासा हो जाता। यह मानव-प्रकृति है।

अरब ने कहा—दाऊद, तुम्हें मालूम है, बंटे की मौत का कितना रस होता है ?

दाऊद—इसका अनुभव तो नहीं है, पर अनुमान कर सकता





















अपने भानजें जुम्मन के नाम लिए ही थी। इसे आप लोग जानते ही होंगे। जुम्मन ने मुझे याजीवन गोटो-कपड़ा देना कबूल किया था। साल-भर तो मैंने उसका साथ रो-भोकर काटा, पर अब गत-दिन का रोना नहीं सहा जाता। मुझे न पेट की गोटो मिलती है और न तन का कपड़ा। बेकरार बंता हूँ। कचहरी-दरबार नहीं कर सकती। तुम्हारे बिना और किसे अपना दुख सुनाऊँ ? तुम लोग जो गलत निकाल दो, उसी गलत पर चलूँ। अगर मुझमें कोई ऐव देवो तो मेरे मुँह पर थप्पड़ मारो। जुम्मन में बुराई देवो तो उसे समझाओ, क्यों एक बेकस बेवा की आह लेना है। मैं पंचों का हुक्म सिर-माथे पर चढ़ाऊँगी।'

रामधन मिश्र, जिनके कई अमासियों को जुम्मन ने अपने गाँव में बसा लिया था, बोले—जुम्मन मिथ्या, किसे पंच बढ़ते हो ? अभी से इसका निपटारा कर लो। फिर जो कुछ पंच कहेंगे, वही मानना पड़ेगा।

जुम्मन को इस समय सदस्यों में विशेषकर वे ही लोग दीख पड़े, जिनसे किसी-न-किसी कारण उसका वैमनस्य था। जुम्मन बोले—पंच का हुक्म अल्लाह का हुक्म है। खालाजान जिसे चाहें उसे वदे, मुझे कोई उज्र नहीं।

खाला ने चिल्लाकर कहा—अरे अल्लाह के बन्दे ! पंचों का नाम क्यों नहीं बता देता ? कुछ मुझे भी तो मालूम हो !

जुम्मन ने क्रोध से कहा—अब इस वक्त मेरा मुँह न खुलवाओ। तुम्हारी बन पड़ी है, जिसे चाहो पंच बढ़ो।

खालाजान जुम्मन के आक्षेप को समझ गई। वह बोली—  
बेटा, खुदा से डरो। पंच न किसी के दोस्त होते हैं, न किसी के  
दुश्मन। किसी बात कहते हो? और तुम्हारा किसी पर विश्वास  
न हो तो जाने दो, अलगू चौधरी को तो मानते हो? लो मैं  
उन्हीं को सरपंच बदती हूँ।

जुम्मन शेख आनन्द से फूल उठे, परन्तु भावों को छिपाकर  
बोले—अलगू चौधरी ही सही, मेरे लिये जैसे रामधन मिसिर  
वैने अलगू।

अलगू इस झमेले में फँसना नहीं चाहते थे। वे कच्ची काटने  
लगे। बोले—खाला, तुम जानती हो कि मेरी जुम्मन से गाढ़ी  
दोस्ती है।

खाला ने गंभीर स्वर से कहा—बेटा दोस्ती के लिये कोई  
अपना इमान नहीं बचता। पंच के दिल में खुदा बसता है। पंचों  
के मुँह से जो बात निकलती है वह खुदा की तरफ से निक  
लती है।

अलगू चौधरी सरपंच हुए। रामधन मिश्र और जुम्मन के  
दूसरे विरोधिया न दुटिया को मन में बहून कोना।

अलगू चौधरी जाने—शेख जुम्मन हम और तुम पुरान  
दोस्त हैं। जब काम पड़ा तुमन हमारी मदद की है और हम भी  
जो कुछ बन पड़ा तुम्हारी सब करत रह ह मगर इस समय तुम  
और बूढ़ा खाला दोनों हम से निगाह में बराबर हा तुमको पचा  
से जो अर्ज करनी हो करो।



जुम्मन शेख इसी संकल्प-विकल्प में पड़े हुए थे कि इतने में अलगू ने फैसला सुनाया—

‘जुम्मन शेख ! पंचो ने इस मामले पर विचार किया । उन्हें यह नीति-संगत मालूम होता है कि खालाजान को माहवार खर्च दिया जाय । हमारा विचार है कि खाला की जायदाद से इतना सुनाफा अवश्य होता है कि माहवार खर्च दिया जा सके । वस, यही हमारा फैसला है । अगर जुम्मन को खर्च देना मजूर न हो, तो हिक्वानामा रद्द समझा जाय ।’

५

यह फैसला सुनते ही जुम्मन सनाटे में आ गए । जो अपना मित्र हो, वही शत्रु का व्यवहार करे और गले पर छुरी फेरे ! इसे समय के फेर के सिवा और क्या कहे ? जिन पर पूरा भरोसा था, उसने समय पड़ने पर धोखा दिया । ऐसे ही अवसरों पर भूठे-सच्चे मित्रों की परीक्षा हो जाती है । यही कलियुग की दोस्ती है ? अगर लोग ऐसे कपटी और धोखे-बाज न होते तो देश में आपत्तियों का प्रकोप क्यों होता । यह है जा-प्लेग आदि व्याधियाँ इन्हीं दुष्कर्मों के ही तो दरुद हैं ।

मगर रामधन मिश्र और अन्य पंच अलगू चौधरी की इस नीतिपरायणता की जी रोलकर प्रशंसा कर रहे थे । वे वृत्त थे—इसी का नाम पचायत है । दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया ! दोस्ती दोस्ती की जगह है, किन्तु धर्म का पालन करना मुख्य है । ऐसे ही सत्यवादियों से बल पृथ्वी टूटती हुई है, नहीं तो













2. 12. 1977

5



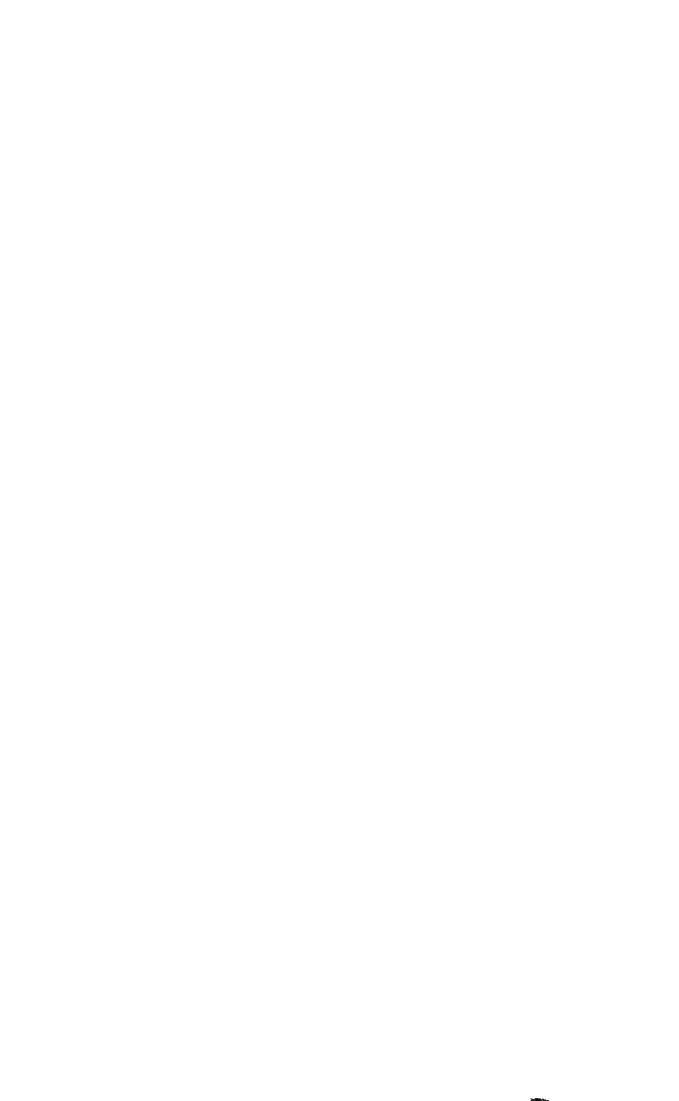


























तो सोच रहा हूँ कि छुट्टी लेकर घर चला जाऊँ। दोनों वक्त घर पर हाजिरी बजानी होगी। आप लोग आज से सरकार के नौकर नहीं, सेक्रेटरी साहब के नौकर हैं। कोई उनके लड़के को पढ़ाएगा, कोई बाजार से सौदा-मुलक लायेगा, और कोई उन्हें अखबार सुनायेगा और चपरासियों के तो शायद दफ्तर में दर्शन ही न हों।

इस प्रकार सारे दफ्तर को सुबोधचन्द्र की तरफ से भड़काकर मदारीलाल ने अपना कलेजा ठंडा किया।

## २

इसके एक सप्ताह बाद जब सुबोधचन्द्र गाड़ी से उतरे, तब स्टेशन पर दफ्तर के सब कर्मचारियों को हाजिर पाया। सब उनका स्वागत करने आये थे। मदारीलाल को देखते ही सुबोध लपककर उनके गले से लिपट गये और बोले—तुम खूब मिले भाई! यहाँ कैसे आये? ओह! आज एक युग के बाद भेट हुई।

मदारीलाल बोले—यहाँ जिलाबोर्ड के दफ्तर में हेड क्लर्क हूँ। आप तो कुशल से हैं?

सुबोध—अजी, मेरी न पूछो। बसरा, फ्रांस, मिस्र और न जाने कहाँ-कहाँ मारा-मारा फिरा। तुम दफ्तर में हो, यह बहुत ही अच्छा हुआ। मेरी तो समझ ही में न आता था कि कैसे काम चलेगा। मैं तो विल्कुल कोरा हूँ, मगर जहाँ जाता हूँ, मेरा सौभाग्य भी मेरे साथ जाता है। बसरे में सभी अफसर खुश थे। फ्रांस में भी खूब चैन किये। दो साल में कोई पच्चीस हजार रुपये बना लाया और सब उड़ा दिया। वहाँ से आकर कुछ



घातें होने लगीं—

“आदमी तो अच्छा मालूम होता है।”

“हेडक्वार्टर के कहने से तो ऐसा मालूम होता था कि सब को कच्चा ही खा जायगा।”

“पहले सभी ऐसी ही बातें करते हैं।”

“ये दिखाने के दाँत हैं।”

३

सुबोध को आये एक महीना गुजर गया। घोड़े के क्लार्क, अरदली, चपरासी सभी उसके वरताव से खुश हैं। वह इतना प्रसन्नचित्त है, इतना नम्र है कि जो उससे एक बार मिलता है, सदैव के लिए उसका मित्र हो जाता है। कठोर-शब्द तो उनकी जवान पर आता ही नहीं। इनकार को भी वह अप्रिय नहीं होने देता। लेकिन द्वेष की आँखों में गुण और भी भयंकर हो जाता है। सुबोध के ये मारे मद्गुण मदारीलाल की आँखों में चटकने रहते हैं। वह उनकी विरुद्ध कोई-न-कोई गुप्त पड्यन्त्र रचते ही रहते हैं। पहले कमचाखियों को भडकाना चाहा, सफल न हुए। घोड़े के मन्बरो को भडकाना चाहा, मुँह ही खाई। ठीकदारों में उभारन का बीड़ा उठाया लज्जित होना पड़ा। वे चाहते थे कि भुस में आग लगा कर आप दूर से द्रष्टा बनें। सुबोध से यों हँस कर मिलते, यों चिकनी-चुपड़ी बातें करते, मानो उनके मन्बे मित्र हैं, पर घान में लगे रहते। सुबोध ने और सब गुण थे, पर आदमी पहचानना न जानते थे। वे मदारीलाल को अब भी



जाने जाया करने हैं। किसी दिन भोग्य उठायेगे।

लार्के ने कहा—उनके कमरे में शराबखानों के मित्र क्यों जाना ही क्यों है ?

मदारीलाल ने नीत स्वर में कहा—नो क्या शराबखाने सब-के-सब देवता हैं। कब कब ही नीतन बरल जाय, कोई नहीं कह सकता। मैंने दो-ती-दो-ती रकमों पर अन्धों-अन्धों की नीयमें बटलते देखी हैं। हम सब हम सभी माद हैं, लेकिन आसन्न पाकर नायद ही कोई नर। मनुष्य की यही प्रकृति है। आप जाकर उनके कमरे के दोना दरवाजे बन्द कर दीजिए।

लार्के ने टाल कर कहा—चपरासी ना दरवाजे पर बैठा हुआ है।

मदारीलाल न झुंझलाकर कहा—आप स मैं नो रहना हूँ वह कीनिय। रुदन लगे चपरासी बैठा हुआ है। चपरासी छोड़े छुपि है मुनि है चपरासी ही कुछ उड़ा दे ना आप उसका क्या कर लेंगे। जमानत भी है ना नीत मौ की। यहाँ एक-एक कागजलाखों का है।

यह कहकर मदारीलाल खुद उठ आर दफ्तर के द्वार दोनों तरफ से बन्द कर दिये। तब तब चित्त शान्त हुआ तब नोटों के पुलिन्द जेब में निकाल कर एक आलमारी में कागजों के नीचे छिपाकर रख दिये। फिर आकर अपने काम में व्यस्त हो गये।

सुबोधचन्द्र कोई बड़े भर में लोटते ना उनके कमरे का द्वार बन्द था। दफ्तर में आकर मुसकिराते हुए बोले—मेरा कमरा किसने बन्द कर दिया है भाई ? क्या मेरी बेदखली हो गई ?

मदारीलाल ने खड़े होकर मृदु तिरस्कार दिखाते हुए कहा—





में जरा-जरा धड़कने होने लगी। मागी मेज के कागज छान डाले, पुलिन्दों का पता नहीं। तब वे कुरसी पर बैठकर उस आव घटे में होने वाली घटनाओं की मन में आलोचना करने लगे—चपगमी ने नोटों के पुलिन्दे लाकर मुझे दिये, खूब याद है। भला यह भी भूलने की बात है और इतनी जल्द। मैंने नोटों को लेकर यही मेज पर रख दिया, गिना तक नहीं। फिर वकील साहब आ गये, पुगने मुलाकाती हैं, उनसे बाने करना हुआ जरा उस पेड़ तक चला गया, उन्होंने पान मँगवाये, बस इतनी ही देर हुई। जब गया हूँ तब पुलिन्दे रखे हुए थे। खूब अच्छी तरह याद है। तब वे नोट कहाँ गायब हो गये। मैंने किसी सन्दूक, दराज या आलमारी में नहीं रखे। फिर गये तो कहाँ। शायद दफ्तर में किसी ने सावधानी के लिए उठा कर रख दिये हों। यही बात है। मैं व्यर्थ ही इतना धवरा गया। छी।

तुरन्त दफ्तर में आकर मदारीलाल से बोले—आपने मेरी मेज पर से नोट तो उठाकर नहीं रख दिये ?

मदारीलाल ने भोचक्क होकर कहा—क्या आपकी मेज पर नोट रखे हुए थे ? मुझ तो खबर नहीं। अभी पंडित सोहनलाल एक फाइल लेकर गए थे तब आपको कमरे में न देखा। जब मुझे मालूम हुआ कि आप किसी से बाने करने चले गये हैं तब दरवाजे बन्द करा दिये। क्या कुछ नोट नहीं मिल रहे हैं ?

सुबोध आँखें फैलाकर बोले—अरे साहब, पूरे पाँच हजार के हैं। अभी-अभी चेक मुनाया है।



केवल परिणत मोहनलाल एक फ्राइल लेकर गये थे, मगर दरवाजे ही से झाँककर चले आये।

मोहनलाल ने सफ़ाई दी—मैंने तो अन्दर कदम ही नहीं रक्खा साहब। अपने जवान घेरे की कुसम खाता हूँ जो अन्दर कदम भी रक्खा हो।

मदारीलाल ने माथा मिकोडकर कहा—आप व्यर्थ में कुसम क्यों खाते हैं, कोई आपसे कुछ कहता है। (सुबोध के कान में) बैंक में कुछ रुपये हों तो निकालकर ठीकदार को दे दिये जायें। वरना बड़ी बदनामी होगी। नुक़मान तो हो ही गया, अब उनके साथ अपमान क्या हो।

सुबोध ने करुण-स्वर में कहा—बैंक में मुश्किल से दो-चार सौ रुपये होंगे भाईजान। रुपये होते तो क्या चिन्ता थी। समझ लेता, जैसे पच्चीस हजार उड़ गये, वैसे तीस हजार उड़ गये। यहाँ तो कफ़न को भी कौड़ी नहीं।

+            +            +

उसी रात को सुबोधचन्द्र ने आत्महत्या कर ली। इतने रुपयों का प्रबंध करना उनके लिए कठिन था। मृत्यु के परदे के सिवा उन्हें अपनी वेदना, अपनी विवशता को छिपाने की और कोई आड नहीं।

४

दूसरे दिन प्रातः काल चपरामी ने मदारीलाल के घर पहुँचकर आवाज दी। मदारीलाल को रात-भर नींद न आई थी। घबराकर बाहर आये। चपरामी उन्हें देखते ही बोला—हज़ूर! बड़ा







इसी वक्त सुबोध के दोनों बालक रोते हुए मदारीलाल के पास आये और कहा—‘नलिये आपको अम्मा बुलाती हैं।’ दोनों मदारीलाल से परिचित थे। मदारीलाल यहाँ तो रोज़ ही आते थे, पर घर में कभी न गये थे। सुबोध की स्त्री उनसे परदा करती थी। यह बुलावा सुनकर उनका दिल धड़क उठा—कहीं इसका मुँह पर शुबहा न हो। कहीं सुबोध ने मेरे विषय में कोई मन्देश न प्रकट किया हो। कुछ भिन्नकते, कुछ डरते, भीतर गए, तब विषय का करुण-विलाप सुनकर कलेजा काँप उठा। इन्हें देखते ही उस अवलता के आँसुओं का कोई दूसरा मोना गुल गया और लड़की तो दौड़ कर उनके पैरों में लिपट गई। दोनों लड़कों ने भी घेर लिया। मदारीलाल को उन तीनों की आँसुओं में ऐसी अथाह वेदना, पसी बिदारक याचना भरी हुई मानस हुई कि वे उनकी ओर देख भी न सके। उनकी आत्मा उन्ह चिकारने लगी। जिन बेचारों का उन पर इतना प्रभाव इतना भरावा, इतनी आत्मीयता, इतना स्नेह था उन्हीं को मदन पर लुगी करी। उन्हीं के हाथों यह भरा पुनः बार बार उल सा मिल गया। इन असहायों का अवस्था जानना यहाँ का विचार करना है कान करना ! यहाँ के लालन-पालन के भार कौन उठावेगा ? मदारीलाल को इतनी अन्धमन्दी में डूँडा कि उनके मुँह में लसता का एक शब्द भी न निकला। उन्ह पसी जान पड़ा कि मेरे मुँह में कालिय गुरी हुई है, मेरा कुँड छूटा ही गया है। इन्हीं जिन वक्त नोट उड़ावे व उन्ह गुमान भी न था कि इसका यह फल होगा। वे केवल सुबोध











राम ने जाकर कहा—बानी यह सन्तान मुझे करने दो । तुम  
जिन्हा पर बैठ जाओगी तो बंदों को रौन भैयालेगा । सुबोध  
हो भाई मे । जिन्दगी में उनके साथ कुछ सन्तान न कर सका, अब  
जिन्दगी के दार हमें दोन्नी या कुछ एक प्रदा कर लेने दो ।  
आज़ि मेरा भी तो उन पर कुछ हक था । रामेश्वरी ने रोकर  
कहा—आपको भगवान ने बड़ा बड़ा हृदय दिया है भैयाजी,  
नहीं तो मरने पर रौन किसकी पड़ता है । दफ्तर के और लोग,  
जो आधी-प्याधी रात तक हाथ बांधे खड़े रहते थे, झूठो बात पृथने  
न आये कि जरा टारम होता ।

मदारीलाल ने दाह-सम्कार किया । तेरह दिन तक क्रिया पर  
बैठे रहे । तेरहवें दिन पिण्डदान हुआ । ब्रह्मणों ने भोजन किया,  
भित्तिारियों को अन्नदान किए गया मित्रा की दावत हुई, और  
यह सब कुछ मदारीलाल ने अपन खूब स किया । रामेश्वरी ने  
बहुत कहा कि आपन जितना किया । उनता ही बहुत है, अब मैं  
आपको और जरवार नहीं करना चाहती । दाम्नी का हक इससे  
ज्यादा और कोई क्या प्रदा करगा । मार मदारीलाल ने एक न  
सुनी । सार शहर में उनक यश की धूम मच गई । मित्र हो तो  
ऐसा हो ।

सोलहवें दिन विधवा ने मदारीलाल से कहा—भैया जी, आप  
ने हमारे साथ जो उपकार और अनुग्रह किए हैं उनसे हम मरत  
दम उच्छ्रय नहीं हो सकते । आपन हमारी पीठ पर हाथ न रखवा  
होता, तो न-जाने हमारी क्या गति होती । कहीं सुख की भी छाँह तो











1. 2. 3. 4. 5. 6. 7. 8. 9. 10.

11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18. 19. 20.

21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30.

31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40.

41.

ने कहा—चल, अभी जाते हैं। बेगम माहबा का मिजाज गरम था। इतनी ताब रहीं कि उनके मिर में दर्द हो, और पनि शतरंज खेलता रहे। चेहरा मुख हो गया। लौड़ी से फटा—जाकर बट, अभी चलिए, नहीं तो बट आप ही हकीम के यहाँ चली जायेंगी। मिर्जाजी बड़ी दिलचस्प बाजी खेल रहे थे, दो ही किरतों में मोरसाहब को मात हुई जाती थी। झुंझलाकर बोले—क्या ऐसा हम लवों पर है ? जग सत्र नहीं होता ?

मीर—अरे, तो जाकर सुन ही आइए न। औरतें नाजक-मिजाज होती ही हैं।

मिर्जा—जी हाँ, चला क्यों न जाऊँ। दो किरतों में आपको मात होती है।

मीर—जनाब, इस भरोसे न रहिएगा। वह चाल सोची है कि आपके मुहरे धरे रहे, और मात हो जाय, पर जाइए, सुन आइए। क्यों ख्वाहमख्वाह उनका दिल दुखाइएगा ?

मिर्जा—इसी बात पर मात ही करके जाऊँगा।

मीर—मैं खेलूँगा ही नहीं। आप जाकर सुन आइए।

मिर्जा—अरे यार, जाना पड़ेगा हकीम के यहाँ। सिर-दर्द खाक नहीं है, मुझे परेशान करने का बहाना है।

मीर—कुछ ही हो, उनकी खातिर तो करती ही पड़ेगी।

मिर्जा—अच्छा, एक चाल और चल लूँ।

मीर—हर्गिज नहीं, जब तक आप सुन न आवेंगे, मैं मुहरे में हाथ ही न लगाऊँगा।



यह कहकर वेगम साहब झुझाई हुई दीवानखाने की तरफ चली। मिर्जा बेचारे का रंग उड़ गया। बीबी की मिन्नतें करने लगे—खुदा के लिए, तुम्हें हजरत हुसैन की कसम। मेरी ही नैयत देखे, जो उधर जाय। लेकिन वेगम ने एक न मानी। दीवान-खाने के द्वार तक गई, पर एका-एक परपुरुष के सामने जाते हुए पाँव बँध-से गए। भीतर झाँका। संयोग से कमरा खाली था। मीर साहब ने दो-एक मुहरे इधर-उधर कर दिए थे और अपनी झुझाई जताने के लिये बाहर टहल रहे थे। फिर क्या था, वेगम ने अन्दर पहुँचकर बाजी उलट दी, मुहरे कुछ तरख के नीचे फेंक दिए, कुछ बाहर, और किवाड अन्दर से वन्द करके कुडी लगा दी। मीर साहब दरवाजे पर नो थे ही, मुहरे बाहर फेंक जाते देखे, चूड़ियों की झनक भी कान में पड़ी। फिर दरवाजा वन्द हुआ, तो समझ गए कि वेगम साहब बिगड़ गई। चुपके से घर की राह ली।

मिर्जा न कहा तुमने राजब किया

वेगम—एक मीर साहब इधर गए तो गले में लालवा  
 दूँगी। इतनी लालवा से लाल, तो सब राजा ही जन आप  
 तो शतरंज खेल रहे, मैं यहाँ क्या कर रही हूँ। १०१ म  
 रपाऊँ ला मत हा एसीम मा १०२ एद नी ना

मिर्जा घर में निले, तो ह

साहब के घर पहुँचे और  
 मैंने तो गले में लालवा



कौनने की तरफ चानी ।

घर नौकरों में भी काना-फुमी होने लगी । अब तक दिन-भर पड़े-पड़े गरिबियाँ मारा करते थे । घर में चाहे कोई आवे, चाहे कोई जाय, उनसे कुछ मनलव न था । आठों पहर की धोस हो गई । कभी पान लाने का हुक्म होता, कभी मिठाई का और हुआ तो किसी प्रेमी के हृदय की भाँति नित्य जलता ही रहता था । वे बेगम साहवा से जा-जाकर कहते—हुजूर, मियाँ की शरंज तो हमारे जी का जंजाल हो गई ! दिन-भर दौड़ते-दौड़ते पैरों में छाले पड़ गए । यह भी कोई खेल है कि सुबह को बैठे, तो शाम ही कर दी ! घड़ी-आध-घड़ी दिल-बहलाव के लिये खेल लेना बहुत है । खैर, हमें तो कोई शिकायत नहीं; हुजूर के गुलाम हैं, जो हुक्म होगा, वजा ही लावेंगे; मगर यह खेल मनहूस है । इसका खेलनेवाला कभी पनपता नहीं; घर पर कोई-न-कोई आफत जरूर आती है । यहाँ तक कि एक के पीछे महल्ले-के-महल्ले तबाह होते देखे गए हैं । सारे महल्ले में यही चर्चा होती रहती है । हुजूर का नमक खाते हैं, अपने आक्का की बुराई सुन-सुन कर रंज होता है, मगर क्या करें । इस पर बेगम साहवा कहती—मैं तो खुद इसको पसन्द नहीं करती, पर वह किसी की सुनते ही नहीं, तो क्या किया जाय ।

महल्ले में भी जो दो-चार पुराने जमाने के लोग थे, वे आपस में भाँति-भाँति के अमंगल की कल्पनाएँ करने लगे—अब खैरियत नहीं है । जब हमारे रईसों का यह हाल है तो मुल्क का खुदा

मिर्जा—बल्लाड, आपको खूब सूझी ! हमारे मित्र और कोई तदवीर ही नहीं है ।

इधर मीर साहब की बेगम उस सवार से कह रही थी—  
‘तुमने खूब धता बनाई ।’ उसने जवाब दिया—‘ऐसे गावदियों को तो चुटकियों पर नचाता हूँ । उनकी सारी अलत और हिम्मत तो शतरंज ने चर ली । अब भूल कर भी घर पर न रहेंगे ।’

३

दूसरे दिन ने दोनों मित्र मुँड-अँधेरे घर से निकल खड़े होते । चणल में एक छोटी-सी दरी दवाए, दिव्ये में गिलौरियाँ भरे, गोमती-पार की एक पुरानी वीरान मसजिद में चले जाने, जिसे गायद नवाब आमिफ़उद्दौला ने बनवाया था । रास्ते में तन्वाइ, चिलम और मदगिया ले लेते और मसजिद में पहुँच, दरी बिछा, हुक्का भरकर शतरंज खेनने बैठ जाते थे । फिर उन्हें दीन-दुनियाँ की फिक्र न रहती थी । ‘मिस्त ग़ह आदि दो-एक शब्दों के मित्रा उनक मुँड ने ओर कोई वाक्य नहीं निकलता था । कोई योगी भी समाधि में इतना एकाग्र न होना होगा । दोपहर को जब भूख मालूम होनी, तो दोनों मित्र किसी नानवाड़े की दूकान पर जाकर खाना खा अन आर एक चिलम हुक्का पीकर फिर संग्राम-जेत्र में डट जाते । कभी-कभी तो उन्हें भोजन का भी खयाल न रहता था ।

इधर देश की राजनीतिक दशा भयकर होती जा रही थी । कम्पनी की फ़ौजें लखनऊ की तरफ़ बढ़ी चली आती थीं । शहर

देखते नहीं थे। लोग बाल-बच्चों को ले-लेकर देहाती  
 भ्रमण रहे थे, पर हमारे दोनों खिलाड़ियों को इसकी जरा भी  
 प्यार नहीं था, वे घर से आते, तो गलियों में होकर। उर था कि  
 यों किसी दान्दशाही कर्मचारी की निगाह न पड़ जाय, जो बेगार  
 पकड़े जायें। हजारों रुपए सालाना की जागीर सुक में ही  
 खर्च करना चाहते थे।

एक दिन दोनों मित्र मसजिद के खंडहर में बैठे हुए शतरंज  
 खेल रहे थे। मिर्जा की बाजी कुछ कमजोर थी। मीर साहब उन्हें  
 मिला-पर-किश्त दे रहे थे। इतने में रज्ज्पती के सैनिक आते हुए  
 खड़ा हुए। यह गोरो की फौज थी, जो लखनऊ पर अधिकार  
 लाने के लिये आ रही थी।

मीर साहब बोले अंगरेजी फौज आ रही है, खुदा खैर करे।

मिर्जा—आने दीजिए किश्त बचाइए। तो यह किश्त।

मीर—जरा देखना चाहिए यहाँ पाइ में खड़े हो जायें।

मिर्जा—देख लीजिएगा जल्दी क्या है फिर किश्त।

मीर—तोपखाना भी है। कोई पांच हजार आदमी होंगे।  
 ऐसे जवान हैं। लाल बन्दरों व-न मुँह है। मूरत देखकर खोफ  
 मालूम होता है।

मिर्जा—जनाब, हीले न कीजिए ये चकमे किसी और को  
 दीजिएगा-यह किश्त।

मीर—आप भी अजीब आदमी हैं। चटा तो शहर पर आफ़त  
 आई हुई है और आप को किश्त की सूझी है। कुछ इसकी भी





सब की चरम सीमा थी ।

मिर्जा ने कहा—हुजूर नवाब साहब को जालिमों ने कैद कर लिया है ।

मीर—होगा, यह लीजिए शह !

मिर्जा—जनाब ज़रा ठहरिए । इस वक्त इधर तबीयत नहीं आती । बेचारे नवाब साहब इस वक्त खून के आँसू रो रहे होंगे ।

मीर—रोया ही चाहें । यह ऐश वहाँ कहाँ नसीब होगा—एक किशत ।

मिर्जा—किसी के दिन बराबर नहीं जाते । कितनी दर्दनाक वस्तु है ।

मीर—हाँ, सो तो है ही—यह लो फिर किशत ! वस, अब दो किशत में मात है, बच नहीं सकते ।

मिर्जा—खुदा की कृपाम, आप बड़े बड़द है । इतना बड़ा इल्म दाँतकर भी आपको दुख नहीं होना । हम गरीब बर्जस—धनी शाह ।

मीर—पहले अपने बादशाह को तब बचाएँ फिर नवाब साहब का मानम कीजिएगा । यह किशत और मत लाना है ।

बादशाह को लिए हुए सैना सामन से निकल गई । तब तब ही मिर्जा ने फिर बाजी बिछा दी । हार की बात सुनकर ही मीर ने कहा—आइए, नवाब साहब का मानम नए सरमिया पड़ टल देंगे मिर्जा जी की राजभक्ति अपनी हार पर संध जुन हो चकी है, वह हार का बदला चुकाने के लिए अधीर हो रहा है ।



मिर्जा की तरफ से भी ।

मिर्जा—महाराज—महाराज साहब की आज्ञाओं में कैंद कर दिये हैं ।

मीर—मैला, यह भी-मिर्जा साहब ।

मिर्जा—महाराज साहब ठीक हैं । इस वक्त इधर नदीयत नहीं जाती । देखकर महाराज साहब इस वक्त गूल के आगु हो रहे होंगे ।

मीर—रोया ही जायें । यह ऐसा बर्तन बर्तन नसीब होगा-  
रहित ।

मिर्जा—किसी ये दिन बराबर नहीं जाते । कितनी दर्दनाक  
है ।

मीर—हा, सो तो ! तो-यह लो फिर फिर । वस, अब  
ही फिर में मान है, वच नहीं सकते ।

मिर्जा—'खुद' की कमम आप बड़े बड़े हैं । इतना बड़ा  
हाथ देखकर भी आपको दुख नहीं होता । हाथ गरीब बाजिद-  
शही शाह ।

मीर—पहले अपने बादशाह को तो बचाइए फिर नवाब साहब  
को मातम कीजिएगा । यह फिर और मान । लाना हाथ ।

बादशाह को लिए हुए सेना सामने से निकल गई । उनके जाते  
ही मिर्जा ने फिर बाजी बिछा दी । हार की चोट बुरी होनी है । मीर  
ने कहा—आइए नवाब साहब को मातम में एक भरसिया कड़ डालें,  
लेकिन मिर्जा जी की राजभक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुकी  
थी, वह हार का बदला चुकाने के लिए अधीर हो रहे थे ।

## दो बेलों की क

?

जानवरो मे गधा सबसे ज्यादा  
हम जब कि को पल्ले दरजे  
है, तो । गधा स  
सीधेपन  
इसका किया  
व्याई अनायास  
लेती नुत गरीब  
भी को । है । ले  
सुना, न चाहे  
सडी हुई

मीर साहब का फरजी पिटना था। बोले—मैंने चाल चली ही कब थी ?

मिर्जा—आप चाल चल चुके हैं। मुहरा वहाँ रख दीजिए। रूमि घर में।

मीर—उस घर में क्यों रक्खूँ ? हाथ से मुहरा छोड़ा कब था ?

मिर्जा—मुहरा आप क़यामत तक न छोड़ें, तो क्या चाल ही न होगी ? फ़रजी पिटते देखा, तो धाँधली करने लगे !

मीर—धाँधली आप करते हैं। हार-जीत तक्क़दोर से होती है, धाँधली करने से कोई नहीं जीतता।

मिर्जा—तो इस बाजी में आप को मात हो गई ?

मीर—मुझे क्यों मान होने लगी।

मिर्जा—तो आप मुहरा उसी घर में रख दीजिए जहाँ पहले रक्खा था।

मीर—वहाँ क्यों रक्खूँ ? नहीं रखता।

मिर्जा—क्यों न रखिएगा ? आप सो रखना ही होगा।

तक़रार बढ़ने लगी। दोनों अपनी-अपनी टेक पर खड़े थे। न यह बबता था न वह। अप्रासंगिक बातें हाने लगा। मिर्जा बोले किसी ने खानदान में शतरंज खेती होती नव तो इसका काफ़ी जानते थे तो हमेशा घाम खीला कि आप शतरंज क्या खेलिएगा ? रियासत और हो चीज़ है। ज़ग़ार मिल जान ही से कोई रईस नहीं हो जाता।

मीर—क्या 'घाम आपर अवघा जान होलन होन' यहाँ ते

## दो बैलों की कथा

१

जानवरो मे गधा सबसे ज्यादा बुद्धिहीन समझा जाता है। हम जब किसी आदमी को पल्ले दरजे का बेवकूफ कहना चाहते हैं, तो उसे 'गधा' कहते हैं। गधा मचमुच बेवकूफ है या उसके मीधेपन, उसकी निरापढ़ महिप्रगुता ने उसे यह पदवी दे दी है, इसका निश्चय नहीं किया जा सकता। गायें सींग मारती हैं, ब्याँट्टे हड्डे गाय ने अनायास ही सिंहिनी का रूप धारण कर लेती है। कुत्ता भी बहुत गरीब जानवर है, लेकिन कभी-कभी उसे भी क्रोध आ ही जाता है। लेकिन गधे को कभी क्रोध करते नहीं सुना, न देखा। जितना चाहो गरीब को मारो, चाहे जैसी सराब सड़ी हुई घास सामने डाल दो, उसके चेहरे पर कभी असंतोष





और भी कई रीतियों से वह अपना असंतोष प्रकट कर देता है, अतएव वेवकूफी में उसका स्थान गधे से नीचा है।

## २

भूरी काछी के दोनों बैलों के नाम थे हीरा और मोती। दोनों पछाई जाति के थे। देखने में सुन्दर, काम में चौकस, डील के ऊँचे। बहुत दिनों साथ रहते-रहते दोनों में भाई-चारा हो गया था। दोनों आमने-सामने या आस-पास बैठे हुए एक दूसरे से मूक भाषा में विचार-विनिमय करते थे। एक दूसरे के मन की बात कैसे समझ जाता था, हम नहीं कह सकते। अवश्य ही उनमें कोई ऐसी गुप्त शक्ति थी, जिससे जीवों में श्रेष्ठता का दावा करने वाला मनुष्य वंचित है। दोनों एक दूसरे को चाटकर और सूँघकर अपना प्रेम प्रकट करते। कभी-कभी दोनों सींग भी मिला लिया करते थे। विप्रद के भाव से नहीं केवल विनोद के भाव से, आत्मीयता के भाव से, जैसे दोस्तों में घनिष्टता होते ही धौल-धप्पा होने लगता है। इसके बिना दोस्ती कुछ फुस-फुसी कुछ हलकी-सी रहती है, जिस पर ज्यादा विश्वास नहीं किया जा सकता।

वक्त ये दोनों बैल हल या गाड़ी में जोत दिए जाते, और गरदने हिला-हिलाकर चलते, तो हरेक की यही चेष्टा होती थी कि ज्यादा-से ज्यादा बोक मेरी ही गरदन पर रहे। दिन भर के बाद दोपहर या संध्या को दोनों खुलते तो एक दूसरे को चाट-चूटकर अपनी थकन मिटा लिया करते। नाँद में खली-भूसा पड जाने के बाद दोनों साथ उठते साथ नाँद में मुँह डालते और साथ ही बैठते

की छाया भी न दिखाई देगी। चैतार में चाहे एकाध बार कुत्तेल कर लेता हो, पर हमने तो उसे कभी लुप्त होते नहीं देखा। उसके चेहरे पर एक स्थायी विपाद स्थिररूप से छाया रहता है। सुख-दुःख, हानि-लाभ, किसी दशा में भी उसे बदलते नहीं देखा। ऋषियो-मुनियों के जितने गुण हैं, वे सभी उसमें अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गये हैं, पर आदमी उसे बेवकूफ कहता है। सद्गुणों का इतना अनादर कहीं नहीं देखा। कदाचित् सीधापन संसार के लिये उपयुक्त नहीं है। देखिये न, भारतवासियों की अफ्रीका में क्यों दुर्दशा हो रही है? क्यों अमेरिका में उन्हें घुसने नहीं दिया जाता? चेचारे शराब नहीं पीते, चार पैसे कुसमय के लिये बचा कर रखते हैं, जो-मोड़ कर काम करते हैं। किसी से लड़ाई-भगड़ा नहीं करते, चरबन मुन कर भी गम खा जाते हैं, फिर भी बदनाम हो कहा जाता है, वे जीवन की आदर्श को नीचा करने हैं। यदि इस तरह के जवान पन्थर से दूना सीखा जात, तो शायद मन्थ कहलाने में नजरान की मिसाल सामन है। एक ही जन्म में उस सनर को मन्थन नियों मगरप बना दिया।

लेकिन लोहे का एक हाट मंद और भी है, जो उससे कुछ ही कम गरीब होकर वह है बैल। जिस अथ म हम गधा शब्द का प्रयोग करते हैं कुछ उम्मीद मिलत-जुलत अथ म बहिया के नाऊ का प्रयोग करते हैं कुछ लोग बैल को शायद बेवकूफी में सबसेष्ट कहेंगे मगर हमारा विचार ऐसा नहीं है। बैल कभी-कभी मारता भी है कभी-कभी अडियल बैल भी दगन में आ जाता है

तो दोनों ने जोर मार कर पगहे तुड़ा डाले और घर की तरफ चले। पगहे बहुत मजबूत थे। अनुमान न हो सकता था कि कोई बैल उन्हें तोड़ सकेगा। पर इन दोनों में इस समय दूनी शक्ति आ गई थी। एक-एक झटके में रस्सियाँ टूट गईं।

भूरी प्रातःकाल सोकर उठा, तो देखा कि दोनों बैल चरनी पर खड़े हैं। दोनों की गरदनो में आधा-आधा गरांव लटक रहा है। घुटनों तक पाँव कीचड़ से भरे हैं और दोनों की आँखों में विद्रोह-मय स्नेह झलक रहा है।

भूरी बैलों को देखकर स्नेह से गद्गद हो गया। दौड़कर उन्हें गले लगा लिया। प्रेमालिंगन और चुन्वन का वह दृश्य बड़ा ही मनोहर था।

घर और गाँव के लड़के जमा हो गए और तालियाँ बजा-बजा कर उनका स्वागत करने लगे। गाँव के इतिहास में यह घटना अभूत-पूर्व न होने पर भी महत्वपूर्ण अवश्य थी। बाल-सभा ने निश्चय किया दोनों पशु-वीरों का अभिनन्दन करना चाहिये। कोई अपने घर से रोटियाँ लाया, कोई गुड़, कोई चोकर और कोई भूसी।

एक बालक ने कहा—ऐसे बैल किमी के पास न होंगे।

दृमरे ने समर्थन किया—इतनी दूर न दोनो अकेले चले आये।

तीमरा बोला—बैल नहीं हैं वे, उम जनम क आदमी हैं।

इसका प्रतिवाद करने का किमी को माहस न हुआ।

भूरी की स्त्री ने बैलों को द्वार पर देखा, तो जल उठी। बोली



ये । एक मुँह हटा लेता, तो दूसरा भी हटा लेता था ।

संयोग की बात, भूरी ने एक बार गोई को समुराल भेज दिया । वैलों को क्या मालूम, वे क्यों भेजे जा रहे हैं । समभे मालिक ने हमे बेच दिया । अपना यों बेचा जाना उन्हें अच्छा लगा या दुरा, कौन जाने, पर भूरी के साले गया को घर तक गोई ले जाने में दाँतो पसीना आ गया । पीछे में हाँकना तो दोनों दाये-बाये भागते, पगहिया पकड़ कर आगे से पीछता, तो दोनों पीछे को जोर लगाते । मारना, तो दोनों नोंग नीचे करके हँसते । अगर ईश्वर ने उन्हें वाणी दी होती तो वे भूरी से पूछते—तुम हम गरीबों को क्यों निकाल रहे हो ? हम ने तो तुम्हारी सेवा करने में कोई कसर नहीं उठा रखी । अगर एतनी मजदूर ने काम न चलता था और कम मजदूर हम तो तुम्हारी खाकरी में मर जाना पड़ता था । हमने कम मजदूर चरवाहा के पास नही रखा । तुमने जो कुछ मालाया वह फिर भुक्त पर रखा । पर हमने हम

तो दोनों ने जोर मार कर पगहे तुड़ा डाले और घर की तरफ चले। पगहे बहुत मजबूत थे। अनुमान न हो सकता था कि कोई बैल उन्हें तोड़ सकेगा। पर इन दोनों में इस समय दूनी शक्ति आ गई थी। एक-एक झटके में रस्सियाँ टूट गईं।

भूरी प्रातःकाल सोकर उठा, तो देखा कि दोनों बैल चरनी पर खड़े हैं। दोनों की गरदनो में आधा-आधा गरांव लटक रहा है। घुटनों तक पाँव कीचड़ से भरे हैं और दोनों की आँखों में विद्रोह-मय स्नेह झलक रहा है।

भूरी बैलों को देखकर स्नेह से गद्गद हो गया। दौड़कर उन्हें गले लगा लिया। प्रेमालिंगन और चुम्बन का वह दृश्य बड़ा ही मनोहर था।

घर और गाँव के लड़के जमा हो गए और तालियाँ बजा-बजा कर उनका स्वागत करने लगे। गाँव के इतिहास में यह घटना अभूत-पूर्व न होन पर भी महत्वपूर्ण अवश्य थी। बाल-ममा न निश्चय किया। दोनों पशु बीरों का अभिनन्दन करना चाहिये। कोई अपने घर में गाँविया लाया, छोड़ गुड़, कोई चोकर और कोई भूमी।

एक बालक ने कहा—ऐसे बैल किसी के पास न होंगे।

दूसरे ने समर्थन किया—इतनी दूर से दोनों आंगेले चले आए।

तीसरा बोला—बैल नहीं ह वे, उस जनम के आदमी हैं।

उसका प्रतिवाद करने का किसी को साहस न हुआ।

भूरी की स्त्री ने बैलों को द्वार पर देखा, तो जल उठी। बोली



३

दूसरे दिन भूरी का साला फिर आया और बैलों को ले चला। अबकी उसने दोनों को गाड़ी में जोना।

दो-चार बार मोती ने गाड़ी को सड़क की खाई में गिराना चाहा; पर हीरा ने सँभाल लिया। वह ज्यादा सहनशील था।

संज्या समय घर पहुँचकर उसने दोनों को मोटी रस्सियों में बाँधा, और कल की शराब का मज़ा चखाया। फिर वही नुस्खा भूसा डाल दिया। अपने दोनों बैलों को खनी, चूनी, सब कुछ दी।

दोनों बैलों का ऐसा अपमान कभी न हुआ था। भूरी इन्हे फूल की छड़ी से भी न छूना था। उसकी टिटकार पर दोनों उड़ने लगते थे। यहाँ मार पड़ी। आहत-सन्मान की व्यथा तो थी ही। उस पर मिला नुस्खा भूसा। नाँद की तरफ आँखें भी न उठाई।

दूसरे दिन गया ने बैलों को हल में जोता, पर इन दोनों ने जैसे पाँव उठाने की कुमम मचा ली थी। वह मारने-मारते थक गया, पर दोनों ने पाँव न उठाया। एक बार जब उस निर्दयी ने हीरा की नाक में खूब डंके जमाये, तो मोती का गुस्मा काबू के बाहर हो गया। हल लेकर भागा। हल, रस्सी, जुआ, जोर, सब टूट-टाटकर बराबर हो गया। गले में बड़ी-बड़ी रस्मियाँ न होनी तो दोना पकड़ाटे ही न आते।

हीरा ने मूक भाषा में कहा—भागना व्यर्थ है।

मोती ने उसी भाषा में उत्तर दिया। दुम्हारी तो इसने ज्ञात ही ले ली थी। अब की बड़ी मार पड़ेगी।

一、  
二、  
三、  
四、  
五、  
六、  
七、  
八、  
九、  
十、

十一、

十二、  
十三、  
十四、  
十五、  
十六、  
十七、  
十八、  
十九、  
二十、

二十一、

二十二、  
二十三、  
二十四、  
二十五、  
二十六、  
二十七、  
二十八、  
二十九、  
三十、

三十一、

三十二、  
三十三、  
三十四、  
三十五、  
三十六、  
三十七、  
三十八、  
三十九、  
四十、

四十一、  
四十二、  
四十三、  
四十四、  
四十五、  
四十六、  
四十七、  
四十八、  
四十九、  
五十、

五十一、  
五十二、  
五十三、  
五十四、  
五十五、  
五十六、  
五十七、  
五十八、  
五十九、  
六十、

六十一、  
六十二、  
六十三、  
六十四、  
六十五、  
六十六、  
六十七、  
六十八、  
六十九、  
七十、

七十一、  
七十二、  
七十三、  
七十四、  
七十五、  
七十六、  
七十七、  
七十八、  
七十九、  
八十、

八十一、  
八十二、  
八十三、  
八十四、  
八十五、  
八十六、  
八十七、  
八十八、  
八十九、  
九十、

九十一、  
九十二、  
九十三、  
九十四、  
九十五、  
九十六、  
九十七、  
九十八、  
九十九、  
一百、

一百一、  
一百二、  
一百三、  
一百四、  
一百五、  
一百六、  
一百七、  
一百八、  
一百九、  
二百、

二百一、  
二百二、  
二百三、  
二百四、  
二百五、  
二百六、  
二百七、  
二百八、  
二百九、  
三百、

三百一、  
三百二、  
三百三、  
三百四、  
三百五、  
三百六、  
三百七、  
三百八、  
三百九、  
四百、

四百一、  
四百二、  
四百三、  
四百四、  
四百五、  
四百六、  
四百七、  
四百八、  
四百九、  
五百、

五百一、  
五百二、  
五百三、  
五百四、  
五百五、  
五百六、  
五百七、  
五百八、  
五百九、  
六百、

六百一、  
六百二、  
六百三、  
六百四、  
六百五、  
六百六、  
六百七、  
六百八、  
六百九、  
七百、

七百一、  
七百二、  
七百三、  
七百四、  
七百五、  
七百六、  
七百七、  
七百八、  
七百九、  
八百、

八百一、  
八百二、  
八百三、  
八百四、  
八百五、  
八百六、  
八百七、  
八百八、  
八百九、  
九百、

九百一、  
九百二、  
九百三、  
九百四、  
九百五、  
九百六、  
九百七、  
九百八、  
九百九、  
一千、



दूसरे दिन भूरी का साला फिर आया और बैलों को ले चला।  
अवनी उसने दोनों को गाड़ी में जोता।

दो-चार बार मोती ने गाड़ी को सड़क की खाई में गिराना  
चाहा; पर हीरा ने सँभाल लिया। वह ज्यादा सहनशील था।

संध्या समय घर पहुँचकर उसने दोनों को मोटी रस्सियों में  
बाँधा, और कल की शरारत का मजा चखाया। फिर वही सूखा  
भूसा डाल दिया। अपने दोनों बैलों को खली, चूनी, सब कुछ दी।

दोनों बैलों का ऐसा अपमान कभी न हुआ था। भूरी इन्हें  
फूल की छड़ी से भी न छूता था। उसकी टिटकार पर दोनों उड़ने  
लगते थे। यहाँ मार पड़ी। आहत-सम्मान की व्यथा तो थी ही,  
उस पर मिला मूखा भूसा। नाँद की तरफ आँखें भी न उठाई।

दूसरे दिन गया ने बैलों को हल में जोता, पर इन दोनों ने  
जैसे पाँव उठाने की कसम खा ली थी। वह मारते-मारते थक  
गया, पर दोनों ने पाँव न उठाया। एक बार जब उम निर्दयी ने  
हीरा की नाक में खूब डंके जमाये, तो मोती का गुस्मा काबू के  
बाहर हो गया। हल लेकर भगा। हल, रस्सी, जुआ, जोत, सब  
टूट-टाटकर बरानर हो गया। गले में बड़ी-बड़ी रस्सियाँ न होतीं  
नो दोना पकड़ाई ही न आते।

हीरा ने मूक भाषा में कहा—भागना व्यर्थ है।

मोती न उमी भाषा में उत्तर दिया। गुम्हारी नो इसने जान  
ही ले ली थी। अब की बड़ी मार पड़गी।

"पडने दो, बैल का जन्म लिया है, तो मार से कहा तक बचेगे।"

"गया दो आदमियों के साथ दौड़ा आ रहा है। दोना २ हाथों में लाठियों हैं।"

मोती बोला - कहो तो दिखा दूँ कुछ मजा में भा। लाठी लेकर आ रहा है।

हीरा ने भमकाया नहीं भाई 'खंडे हो च'।

मुझे मारेगा, तो मैं भी पर = हो गिरा दूँ।

नहीं हम गी च न क. यह = नपा है

३

दूसरे दिन भूरी का साला फिर आया और बैलों को ले चला।  
अवनी उसने दोनों को गाड़ी में जोता।

दो-चार बार मोती ने गाड़ी को सड़क की खाई में गिराना  
चाहा; पर हीरा ने सँभाल लिया। वह ज्यादा सहनशील था।

सध्या समय घर पहुँचकर उसने दोनों को मोटी रस्सियों में  
बाँधा, और कल की शरारत का मजा चखाया। फिर वही सूखा  
भूसा डाल दिया। अपने दोनों बैलों को खली, चूनी, सब कुछ दी।

दोनों बैलों का ऐसा अपमान कभी न हुआ था। भूरी इन्हें  
फूल की छड़ी से भी न छूता था। उसकी टिटकार पर दोनों उड़ने  
लगते थे। यहाँ मार पड़ी। आहत-सम्मान की व्यथा तो थी ही,  
उम पर मिला मूखा भूसा। नाँद की तरफ आँखें भी न उठाई।

दूसरे दिन गया ने बैलों को हल में जोता; पर इन दोनों ने  
जैसे पाँव उठाने की कमम खाती थी। वह मारते-मारते थक  
गया, पर दोनों न पाँव न उठाया। एक बार जब उम निर्दयी ने  
हीरा की नाक में खूब डंडे जमाये, तो मोती का गुस्सा काबू में  
बाहर हो गया। हल लेकर भगा। हल, रम्मी, जुआ, जोत, सब  
टूट-टाटकर बगार हो गया। गले में बड़ी-बड़ी रस्सियाँ न होनी  
तो दोनों पकड़ाई ही न आते।

हीरा ने मृदु भाषा में कहा—भागना व्यर्थ है।

मोती ने उसी भाषा में उत्तर दिया। गुस्सारी तो हमने जान  
ना ले ली थी। अब की बड़ी मार पड़ेगी।





‘गुरुदेव, मैं आपकी आज्ञा मान रहा हूँ, जो मरने में नहीं रुकता’

‘गुरुदेव, आपकी आज्ञा मैं मान रहा हूँ, जो मरने में नहीं रुकता’

‘गुरुदेव—आपकी आज्ञा मैं मान रहा हूँ, जो मरने में नहीं रुकता’

‘गुरुदेव—आपकी आज्ञा मैं मान रहा हूँ, जो मरने में नहीं रुकता’

‘गुरुदेव, मैं आपकी आज्ञा मान रहा हूँ, जो मरने में नहीं रुकता’

‘गुरुदेव, मैं आपकी आज्ञा मान रहा हूँ, जो मरने में नहीं रुकता’

‘गुरुदेव, मैं आपकी आज्ञा मान रहा हूँ, जो मरने में नहीं रुकता’

‘गुरुदेव, मैं आपकी आज्ञा मान रहा हूँ, जो मरने में नहीं रुकता’

‘गुरुदेव, मैं आपकी आज्ञा मान रहा हूँ, जो मरने में नहीं रुकता’











मोती ने अपनी सांकेतिक भाषा में कहा—मेरा जी तो चाहता था कि बचा को मार ही डालूँ ।

हीरा ने तिरस्कार किया—गिरे हुए बैरी पर सींग न चलाना चाहिये ।

“यह सब ठोंग हैं । बैरी को ऐसा मारना चाहिए कि फिर न उठे ।”

“अब घर कैसे पहुँचेंगे, यह सोचो ।”

“पहले कुछ खा लें, तो सोचें ।”

सामने मटर का खेत था ही । मोती उसमें घुस गया । हीरा मना करता रहा; पर उसने एक न सुनी । अभी दो ही चार ग्रास खाए थे कि दो आदमी लाठियों लिए दौड़ पड़े, और दोनों मित्रों को घेर लिया । हीरा तो मेंड़ पर था, निकल गया । मोती सींचे हुए खेत में था । उसके खुर कीचड़ में धँसने लगे । भाग न सका । पकड़ लिया गया । हीरा ने देखा, संगी संकट में है, तो लौट पड़ा । फँसेंगे तो दोनों साथ फँसेंगे । रखवालों ने उसे भी पकड़ लिया ।

प्रातःकाल दोनों मित्र कांजी-होस में वन्द कर दिए गए ।

५

दोनों मित्रों को जीवन में पहली बार ऐसा सावका पड़ा कि । दिन बीत गया और खाने को एक तिनका भी न मिला ।

ही में न आता था, यह कैसा स्वामी है । इससे तो गया फिर भी अच्छा था । वहाँ कई भैंसें थीं, कई बकरियाँ, कई घोड़े, कई गधे, परन्तु चारा किसी के सामने न था । सब ज़मीन पर



बाड़े में बाहर भाग दिया और जब स्नान करने बन्धु के पास आ कर जो रहा ।

भोर होने ही मुशी, चौकीदार तथा अन्य कर्मचारियों में कैसी सलतनी मची, उसके लिगने की ज़रूरत नहीं । यम इतना ही काफ़ी है कि मोती की रात सम्भवतः हुई और उसे भी मोती रस्मी से बाँध दिया गया ।

## ६

एक सप्ताह तक दोनों मित्र यहाँ बँधे पड़े रहे । किसी ने चारे का एक नृण भी न डाला । हाँ, एक बार पानी दिया गया था । यही उनका आभार था । मृते आममान के नीचे वे दिन-रात पड़े रहते थे । दोनों इतने दुर्बल हो गए थे कि उठा तक न जाना था । ठठरियाँ निकल आई थीं

एक दिन बाड़े के सामने दूधगी बजन लगी और दो पहर होते-होते वहाँ पचास साठ आदमी जमा हो गए । तब दोनों मित्र निकाले गये और उनकी दृष्टि भाल हान लगी । लोग आ-आकर उनकी मूरत देखते और मन फीका करके चले जाते । ऐसे मृतक वेलों का होना सरीदार हाना

सहसा एक दृष्टियल आदमी जिसका आँखें लाल थीं और मुद्रा अत्यन्त भठोर, आया और दोनों मित्रों के कूल्हों में उँगली गोद कर मुशी जी से बातें करने लगा । उसका चेहरा देख कर, अन्तरज्ञान से, दोनों मित्रों का दिल काँप उठे । वह कौन है और उन्हें क्यों टटोल रहा है, इस विषय में उन्हें कोई सन्देह न रहा ।



हे । हाँ, इसी रातने से गया उन्हें ले गया था । गद्दी खोल, लकी चाय, गद्दी गाँव मिलने लगे । प्रति क्षण उनकी आल तेज होने लगी । मागी शकान, मारी दुर्बलता गायब हो गई । अहा ! यह लो ! अपना ही द्वार आगया । इसी क्षण पर हम पुर जानने आया करते थे । हाँ, गद्दी कुशौ है ।

मोती ने कहा—हमारा घर नगीच आ गया ।

हीरा बोला—भगवान की दया है ।

“मैं तो अब घर भागता हूँ ।”

“यह जाने देगा ?”

“इसे मैं मार गिराता हूँ ।”

“नहीं-नहीं, दौड़ कर थान पर चलो । वहाँ से हम आगे न जायेंगे ।”

दोनों उत्सुक होकर बछड़ा की भाँति कुलेले करते हुए घर की ओर दौड़े । वह हमारा थान है । दोनों दौड़ कर अपने थान पर आए और खडे हो गए । दड़ियल भी पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था ।

भूरी द्वार पर बैठा धूप खारहा था । बैलो को देखते ही दौड़ा और उन्हें बारी-बारी से गले लगाने लगा । मित्रों की आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे । एक भूरी का हाथ चाट रहा था ।

इसी समय दड़ियल ने आ कर बैलों की रस्सियाँ पकड़ लीं ।

भूरी ने कहा—मेरे बैल हैं ।

“तुम्हारे बैल कैसे । मैं मवेशीखाने से नीलाम लिए आता हूँ ।”

दोनों ने एक दूसरे को भीत नेत्रों से देखा और सिर झुका लिया।

हीरा ने कहा—गया के घर से ताहक भागे। अब जान न बचेगी।

मोती ने अश्रुद्धा के भाव से उत्तर दिया—कहते हैं, भगवान सब के ऊपर दया करते हैं। उन्हें हमारे ऊपर क्यों दया नहीं आती।

“भगवान के लिए हमारा मरना-जीना दोनों बराबर हैं। चलो अच्छा ही है, कुछ दिन उनके पास तो रहेंगे। एक बार भगवान ने उस लड़की के रूप में हमें बचाया था। क्या अब न बचायेगे।”

“यह आदमी छुरी चलावेगा। देख लेना।”

“तो क्या चिन्ता है। मांस, खाल, सींग, हड्डी सब किमी-न-किसी काम आ जायेंगी।”

नीलाम हो जाने के बाद दोनों मित्र उस दड़ियल के साथ चले। दोनों की थोटी-थोटी काँप रही थी। बेचारे पाँव नरम न उठा सकते थे, पर भय के मारे गिरते-पड़ते भागे जाते थे, क्योंकि वह जग भी चाल धीमी हो जाने पर जोर से टपटा जमा देता था।

राह में गाय-बैलों का एक रेवड हरे-हरे हाथ में चरना नज़र आया। सभी जानवर प्रसन्न थे, चिन्ते, खपल। कोई गलतना था, कोई आनन्द में बैठे पाशुर करता था। कितना सुखी जीवन था इनका, पर कितने न्यायी हैं सब। किसी को चिन्ता नहीं कि उनके दो भाई दधिर के हाथ पड़े हैं।

सहसा दोनों को ऐसा भाव हुआ कि वह परिचित राह



“हमारी जान को कोई जान ही नहीं समझता ।”

“उसीलिये कि हम इतने सीधे होते हैं ।”

जरा देर में नाँदों में खली, भूसा, चोकर, दाना भर दिया गया और दोनों मित्र खाने लगे । भूरी खड़ा दोनों को सहला रहा था और बीसों लडके तमाशा देख रहे थे । सारे गाँव में उझाड़-सा मालूम होता था ।

उसी समय मालकिन ने आकर दोनों के माथे चूम लिये ।

— — —

है जो आशय है, तुम ही जानो हो। तुम्हारे से मैंने  
कभी। मैंने कहा है। मैंने कहा है। मैंने कहा है। मैंने कहा है।  
मैंने कहा है। मैंने कहा है। मैंने कहा है। मैंने कहा है।

“आकर आने से मत नर देगा।”

“मैंने कहा है। मैंने कहा है। मैंने कहा है। मैंने कहा है।”

दृष्टिगत भाग्य पर दितो जो लक्ष्मणजी पकड़ ले जाने के लिये  
बता। अभी वह मोती ने सांग बताया। दृष्टिगत पीछे हटा।  
मोती ने पीछा किया। दृष्टिगत भागा। मोती पीछे दौड़ा। गाँव के  
बाहर निशान जाने पर यह रहा, पर गड़ा दृष्टिगत का गस्ता देखा  
रहा था। दृष्टिगत दूर गया भगवतिर्या टें रहा था, गालियाँ निकाल  
रहा था, पत्थर फेंक रहा था और मोती विजयी शूर की भाँति  
चमका रान्ता रोके गड़ा था। गाँव के लोग यह तमाशा देखते थे,  
और हँसते थे।

जब दृष्टिगत हार कर चला गया, तो मोती अकड़ता हुआ  
लौटा।

दीरा ने कहा—मैं डर रहा था कि कहीं तुम गुस्से में आकर  
मार न चेंठो।

“अगर वह मुझे पकड़ता, तो मैं बेसारे न छोड़ता।”

“अब न आवेगा।”

“आवेगा तो दूर ही से खबर लूँगा। देखूँ, कैसे ले जाता है।”

“जो गोली मरवादे?”

“मर जाऊँगा। पर उसके काम तो न आऊँगा।”

हन्ने के फेद काधेविन, थानेदार, मिता-किमान के आक्रम, सब जगह सब जौमान में पग हो गइया । मर्तों धारे मृशी क कुने में मगाले । पग भाग ! उनके द्वार पर आव इतने गंते-गंते हाकिम आकर ठहरते हैं । जिन हाकिमों के सामने उनका मुँह न सुजता था, पत्नी की आव मालतो-मालतो कहते जगह मृगशी भी । कभी कभी भजन भाव हो जाता । एक मर्त्यामा ने जौत आस्था देना तो गाँव में आमान जमा दिया । गाँवों और धर्म की बदल करने लगी । एक लोलक आगे, मँजीर मँगाए गए, मर्यादा होने लगा । यह सब सुजान क दम का अन्त था । घर में लोगों दुख होना, मगर सुजान क कल-गले एक धुँद जाने की भी कसम थी । कभी हाकिम लोग गमने, कभी मर्त्यामा लोग । किमान को धन-धी में क्या मतलब । उसे तो गोटो और साग खाटिण । सुजान को नयना भा आव पगवार न था । सबके सामने धार झुकाए रहना, सब लोग पद न कहने लगे कि धन पाकर दण्ड जमाइ हो गया है । गाँव में कल नान हो कुँथ, बहुत-से स्वता में पना न रहना था । गाँवों मारी जालो थी, सुजान ने एक पहा ऊँची और बनसा दिया । हाथ का विवाद हुआ, यत हुआ, प्रत्यभोन हुआ । जिन दिन हाथ पर पत्नी धार पुर चला, सुजान को माना चारा रहना मतलब । जो काम गाँव में किसी ने न किया था, वह धार पद क पुण्य-प्रताप से सुजान न कर दिखाया ।

एक दिन गाँव में गया क यात्री आकर ठहर । सुजान ही के द्वार पर उनका भोजन बना । सुजान क मन में भी गया करने

की बहुत दिनों से इच्छा थी। यह अच्छा अवसर देखकर वह भी चलने को तैयार हो गया।

उसकी स्त्री बुलाकी ने कहा—अभी रहने दो, अगले साल चलेंगे।

सुजान ने गंभीर भाव से कहा—अगले साल क्या होगा, मैं जानता हूँ। धर्म के काम में मीन-मेघ निकालना अच्छा नहीं। जिंदगानी का क्या भरोसा।

बुलाकी—हाथ खाली हो जायगा।

सुजान—भगवान् की इच्छा होगी तो फिर रुपए हो जायेंगे। उनके यहाँ किस बात की कमी है।

बुलाकी इसका क्या जवाब देती। सत्कार्य में बाधा डाल कर अपनी मुक्ति क्यों बिगाड़ती? प्रातःकाल स्त्री और पुरुष गया करने वाले। वहाँ से लौटते, तो यज्ञ और ब्रह्मभोज की ठहरा। माता बिगादरी निमंत्रित हुई, ग्यारह गाँवों में सुपारी बटी। इस धूमधाम से कार्य हुआ कि चारों ओर बाह-बाह मच गई। सब यही कहते कि भगवान् धन दें, तो दिल भी ऐसा हो दूँ घमट नो छू नहीं गया, अपने हाथ से पत्तल उठाना फिरना था। कुन का नाम जगा दिया। बेटा हो, तो ऐसा हो। बाप मरा तो घर में मृत्ती नाँग भी नहीं थी। अब लक्ष्मी घुटने तोंड घर आ बैठी है।

एक द्वेपी ने कहा—'कहीं गडा हुआ धन पा गया है। तो चारों ओर से उस पर बौद्धारों पड़ने लगी—हा, तुम्हारे दण्ड-पना जो खजाना छोड़ गए थे, वही उसके हाथ लग गया है।

अरे भैया, यह धर्म की कमाई है। तुम भी तो छानी फाड़ कर काम करते हो, क्यों ऐसी ऊम्र नहीं लगती, क्यों ऐसी फमल नहीं होती? भगवान आदमी का दिल देखते हैं; जो खर्च करना जानता है, उसी को देते हैं।

२

सुजान महतो सुजान-भगत हो गए। भगतों के आचार-विचार कुछ और ही होते हैं। भगत बिना स्नान किए कुछ नहीं खाता। गंगाजी अगर घर से दूर हों और वह रोज स्नान करके दोपहर तक घर न लौट सकता हो, तो पर्वों के दिन तो उसे अवश्य ही नहाना चाहिए। भजन-भाव उसके घर अवश्य होना चाहिए। पूजा-अर्चा उसके लिये अनिवार्य है। खान-पान में भी उसे बहुत विचार रखना पड़ता है। सबसे बड़ी बात यह है कि भूठ का त्याग करना पड़ता है। भगत भूठ नहीं बोल सकता। साधारण मनुष्य को अगर भूठ का ढंड एक मिले, तो भगत को एक लाख से कम नहीं मिल सकता। अज्ञान की अवस्था में कितने ही अपराध चम्य हो जाते हैं। ज्ञानी के लिये चम्य नहीं है, प्रायश्चित्त नहीं है, अगर है भी तो बहुत कठिन। सुजान को भी अब भगतों की मर्यादा को निभाना पड़ा। अब तक उसका जीवन मजूर का जीवन था। जीवन का कोई आदर्श, कोई मर्यादा उसके सामने न थी। अब उसके जीवन में विचार का उदय हुआ, जहाँ का मार्ग काँटों से भरा हुआ है। स्वार्थ-सेवा ही पहले उसके जीवन का लक्ष्य था, इसी काँटे से वह



मे भी भाग्यहीनी की मज्जा न थी जाती। समय के पाग कोड़े जाने ही न पाया। दोनो लड़के या बच्चे बुलाकी दूर ही से मायना कर लिया करती। गाँव भर में बुलाकी का मान-सम्मान बढ़ा था, अपने घर में चला था। लड़के बसहा सरकार पाग पाल कर रहे। उसे हाथ में सामग्री उठाते देना लपककर मूढ़ बट्टा लेने, उसे निलम न भरने देते, यदा नक कि उसकी धोनी छोटने के लिये भी आपस करनी न। अगर अधिकार उसके हाथ में न था। यह अब घर का मरामो नहीं, मन्त्रि का देना था।

३

एक दिन बुलाकी श्रोगनी में दाल छांट रही थी कि एक भिगमगा द्वार पर आकर लिजान लगा। बुलाकी ने मोना, दाल छोट लूँ, तो उसे कुछ दे दूँ। उनसे मे बट्टा लटका भोला आकर बोला—अम्मा, एक महात्मा द्वार पर खड़े मला फाट रहे हैं। कुछ दे दो। नहीं, उनका रोया दुखी हो जायगा।

बुलाकी ने उपेक्षा-भाव से कहा—भगन क पाँव में क्या मेहदी लगी है, क्यों कुछ ले जाकर नहीं दे देते। क्या मेरे चार हाथ हैं? किम-किमका रोया सुग्री करूँ, दिन भर तो तौता लगा रहता है।

भोला—चोपट करन पर लगे हुए हैं और क्या। अभी महुँगू वेग देने आया था। हिमाच से ७ मन हुए। तौला तो पौने सात मन ही निकले। मैंने रहा—दस सेर और ला, तो आप बैठे-बैठे कहते हैं, अब उनकी दूर कहाँ लेने जायगा। भरपाई लिख





बुलाकी—तुम तो भगवान् का काम करने को बैठे ही हो, क्या घर-भर भगवान् ही का काम करेगा ?

सुजान—कहाँ आटा रक्खा है, लाओ मैं ही निकालकर दे आऊँ। तुम रानी बनकर बैठो।

बुलाकी—आटा मैंने मर-मर कर पीसा है, अनाज दे दो। ऐसे मुड़चिरो के लिये पहर रात से उठकर चक्की नहीं चलाती हूँ।

सुजान भंडारघर में गए और एक छोटी-सी छावड़ी जो से भर हुए निकले। जो सेर-भर से कम न था। सुजान ने जान-बूझकर, केवल बुलाकी और भोला के चिढ़ाने के लिये, भिजा-परम्परा का उल्लंघन किया था। तिस पर भी वह दिखाने के लिये कि छावड़ी में बहुत ज्यादा जो नहीं है, वह उसे चुटकी से पकड़े हुए थे। चुटकी इतना बल न सँभाल सकती थी। हाथ काँप रहा था। एक क्षण का विलंब होने में छावड़ी के हाथ से छूटकर गिर पड़ने की सम्भावना थी। इमीलिये वह जल्दी से बाहर निकल जाना चाहते थे। महमा भोला ने छावड़ी उनके हाथ से छीन ली और त्योरियाँ बदलकर बोला—मेन का माल नहीं है, जो लुटाने चले हो। छाती फाड़-फाड़कर काम करते हैं, तब दाना घर में आता है।

सुजान ने खिमियाकर कहा—मैं भी तो बैठा नहीं रहता।

भोला—भीख भीख की तरह दी जाती है, लुटाई नहीं जाती। हम तो एक बेला खाकर दिन काटते हैं कि इज्जत बनी रहे

मे, नहीं उसका रोया दुखी होगा। मैंने भरपाई नहीं लिखी।  
 उस संर बाकी लिख दी।

बुलाही—बहुत अच्छा किया तुमने, बरुने दिया करो। दस-  
 पाँच रूफे मुँह की ग्वायेंगे, तो आप ही बोलना छोड़ देने।

भोला—दिन-भर एक-न-एक खुचड़ निकालते रहते हैं। सौ  
 रूफे कह दिया कि तुम घर-गृहस्थी के मामले में न बोला करो,  
 पर इनसे बिना बोले रहा ही नहीं जाता।

बुलाही—मैं जानती कि इनका यह हाल होगा, तो गुरु-  
 नत्र न लेने देनी।

भोला—भगत क्या हुए कि दीन-दुनिया दोनों से गए।  
 नारा दिन पूजा-पाठ में ही उड़ जाता है। अभी ऐसे बूढ़े नहीं हो  
 गए कि कोई काम ही न कर सके।

बुलाही ने आपत्ति की—भोला, यह तो तुम्हारा कुन्याव है।  
 पावडा-कुडाल अब उनसे नहीं हो सकता, लेकिन कुद्ध-न-कुद्ध  
 नो करते ही रहते हैं। बैलो को सानी-पानी देते हैं गाय दुहाते  
 हैं और भी जो कुद्ध हो सकता है, करते हैं।

भिलुक अभी तक खड़ा चिला रहा था। सुजान ने जब घर  
 में से किसी को कुछ लाते न देखा, तो उठकर अन्दर गया और  
 कठोर स्वर से बोला—तुम लोगों को कुछ सुनाई नहीं देता कि  
 द्वार पर कौन घंटे-भर से खड़ा भीख माँग रहा है। अपना काम  
 तो दिन-भर करना ही है, एक घन भगवान् का काम भी तो कर  
 दिया करो।

हाथ से अनाज छीन लिया। इसके मुँह से इतना भी न निकला कि ले जाते हैं, ले जाने दो। लड़कों को न मालूम हो कि मैंने कितने श्रम से यह गृहस्थी जोड़ी है, पर यह तो जानती है। दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा। भादों की अँधेरी रातों में मड़ैया लगाए जुआर की रखवाली करता था, जेठ-वैसाख की दोपहरी में भी दम न लेता था और अब मेरा घर पर इतना अधिकार भी नहीं है कि भीख तक दे सकूँ। माना कि भीख इतनी नहीं दी जाती, लेकिन इनको तो चुप रहना चाहिये था, चाहे मैं घर में आग ही क्यों न लगा देता। कानून से भी तो मेरा कुछ होता है। मैं अपना हिस्सा नहीं खाता, दूसरो को खिला देता हूँ; इसमें किसी के बाप का क्या साम्ना। अब इस वक्त मनाने आई है ! इसे मैंने फूल की छड़ी से भी नहीं छुआ, नहीं तो गाँव में ऐसी कौन औरत है, जिसने खसम की लातों न खाई हो; कभी कड़ी निगाह से देखा तक नहीं। रुपए-पैसे लेना-देना, सब इसी के हाथ में दे रक्खा था। अब रुपए जमा कर लिए हैं, तो मुझी से घमंड करती है। अब इसे बेटे प्यारें हैं, मैं तो निखट्टू, लुटाऊ, घर-फूँकू, बोवा हूँ। मेरी उसे क्या परवा। तब लड़कें न थे, जब बामार पड़ी थी और मैं गोद में उठाकर बेटे के घर ले गया था। आज इसके बेटे हैं और यह उनकी माँ है। मैं तो बाहर का आदमी हूँ, मुझसे घर से मतलब ही क्या। बोला—मैं अब खा-पीकर क्या करूँगा, हल जोतने से रहा, फावड़ा चलाने से रहा। मुझे खिलाकर दाने को क्यों

और तुम्हें लुटाने की नृमत्ती है। तुम्हें क्या मालूम कि घर में क्या हो रहा है।

सुजान ने हमका कोई जवाब न दिया। बाहर आकर भित्तारी से कह दिया—बाबा हम समय जाओ, किसी का हाथ खाली नहीं है और स्वयं पेड़ के नीचे बैठकर विचारों में नम हो गया। अपने ही घर में हमका यह अनादर। अभी वह अपाहिज नहीं है, हाथ-पांव थके नहीं हैं, घर का कुछ-न-कुछ काम करता ही रहता है। उन पर यह अनादर। उन्नी ने यह घर बनाया, यह सारी विभूति उसी के श्रम का फल है पर अब इस घर पर उसका कोई अधिकार नहीं रहा अब वह द्वार का कुत्ता है, पड़ा रहे और घरवाले जो रूखा-मूखा ढे ढे वह खाकर पेट भर लिया करे। ऐसे जीवन को धिक्कर दे सुजान ऐसे घर में नहीं रह सकता।

सन्ध्या हो गई थी भोला का छोटा भाई शकर नारियल भर कर लाया। सुजान न नारियल दीवार से टिकाकर रख दिया। धरे-धरे तब तक जल गया। जब डर में भोला ने द्वार पर चारपाई डाल दी। सुजान पड़क नीचे से न उठा।

कुछ दूर खंडर सुजरी भोजन तैयार हुआ भोला लुटाने आया। सुजान न कह मुख नवा है बहुत मनवान करने पर भी न उठा तब लुन का ने आकर कहा 'गाना गान क्या नहीं चलते। जी तो अच्छा है।'

सुजान को सबसे अधिक क्रोध बुलाकी ही पर था यह भी लडका व साथ है। यह बैठी देखती रही और भाला ने में

कमाई है; हाँ, मैं बाहरी आदमी हूँ।

बुलाकी—बेटे तुम्हारे भी तो हैं।

सुजान—नहीं, मैं ऐसे बेटों से बाज़ आया। किसी और के बेटे होंगे। मेरे बेटे होते, तो क्या मेरी यह दुर्गति होती।

बुलाकी—गालियाँ दोगे तो मैं भी कुछ कह बैठूँगी। सुनती थी, मर्द बड़े समझदार होते हैं, पर तुम तो सबसे न्यारे हो। आदमी को चाहिए कि जैसा समय देखे, वैसा काम करे। अब हमारा और तुम्हारा निवाह इसी में है कि नाम के मालिक बने रहें और वही करें, जो लड़कों को अच्छा लगे। मैं यह बात समझ गई, तुम क्यों नहीं समझ पाते। जो कमाता है उसी का घर में राज होता है, यही दुनिया का दस्तूर है। मैं बिना लड़कों से पूछे कोई काम नहीं करती, तुम क्यों अपने मन की करते हो। इतने दिनों तो राज कर लिया, अब क्यों इस माया में पड़े हो। चलो खाना खा लो।

सुजान—नो अब मैं द्वार का कुत्ता हूँ ?

बुलाकी—बात जो थी, वह मैंने कह दी, अब अपने को जो चाहे समझो।

सुजान न उठे। बुलाकी हार कर चली गई।

सुजान के सामने अब एक नई समस्या खड़ी हो गई थी। वह बहुत दिनों से घर का स्वामी था और अब भी ऐसा ही समझता था। परिस्थिति में कितना उलट-फेर हो गया था, इसकी

खराब करोगी । रख दो, बेटे दूसरी बार खाएँगे ।

बुलाकी—तुम तो जरा-जरा सी चान पर निनक जाते हो । सब कहा है, बुढ़ापे में आदमी की बुद्धि मारी जाती है । भोला ने इतना ही तो कहा था कि इतनी भीख मत ले जाओ, या और कुछ ?

सुजान—हाँ, बेचारा इतना ही कह कर रह गया । तुम्हें तो मजा आता, जब वह ऊपर से दो-चार डंडे लगा देता । क्यों ? अगर यही अभिलाषा है, तो पूरी कर लो । भोला खा चुका होगा, बुला लाओ । नहीं, भोला को क्यों बुलानी हो, तुम्हों न जमा दो दो-चार हाथ । इतनी कसर है, वह भी पूरी हो जाय ।

बुलाकी—हाँ और क्या, यह तो नारी का धर्म ही है । अपने भाग साराहो कि सुन्न-जैसी नीधी औरत पा ली । जिस वन चाहते हो, बिठाते हो । ऐसी सुहजोर होनी तो तुम्हारे घर में एक दिन निवाह न होता ।

सुजान—हाँ भाई, वह तो मैं ही कह रहा हूँ कि तुम देवी थी और हो । मैं अब भी गलम या और सब तो देख ही गया हूँ । बेटे कमाऊ है, उनकी-सी न करोगी तो क्या मेरी-सी करोगी सुन्नते सब क्या लेना-देना है ।

बुलाकी—तुम नगाडा करने पर तुम देठा हा और मैं नगाडा बचाती हूँ कि घर आदमी नैसंगे । सब कर रहा हूँ तो सब से, नहीं तो मैं भी जाबर में रहूँगी ।

सुजान—तुम शूरी क्यों तो रही । तुम्हारे घर में तो

नहीं। गत को मोया ही नहीं।

सुजान भगत ने ताने में कहा—वह मोया ही कब है। जब देखता हूँ, काम ही करता रहता है। ऐसा कमाऊ संसार में और कौन होगा !

इतने में भोला आँखें मलना हुआ बाहर निम्ला। उसे भी यह ढेर देखकर आश्चर्य हुआ। मा ने बोला—क्या शंकर आज बड़ी गत को उठा था, अम्मा ?

बुलाकी—वह तो पड़ा मो रहा है। मैंने तो ममन्ता, तुमने काटी होगी।

भोला—मैं तो मंवेरे उठ ही नहीं पाता। दिन भर चाहे जितना काम कर लूँ, पर गत को मुक्त से नहीं उठा जाता।

बुलाकी—तो क्या तुम्हारे दादा ने काटी है ?

भोला—हाँ, मालूम तो होता है। गत-भर सोए नहीं। मुक्त से कल बड़ी भूल हुई। अरे ' वह तो डल लेकर जा रहे हैं ' जान देन पर उताह हो गए हैं क्या ?

बुलाकी—कोधी तो मदा के हैं अब किसी की सुनेंगे थोड़े ही।

भोला—शंकर को जगा दो मैं भी जल्दी से मुँह-हाथ धोकर हल ले जाऊँ।

जब और किसानों के साथ हल लेकर भोला खेत में पहुँचा तो सुजान आया खेत जोत चुक था। भोला ने चुपके-से काम करना शुरू किया। सुजान से कुछ बोलने की उसकी हिम्मत न पड़ी।

ने खबर न थी। लड़के उसके सेवा-सम्मान करते हैं, यह बात मे भन में डाले हुए थी। लड़के उसके सामने चिलन नहीं पीते, नट पर नहीं बैठते, क्या यह सब उसके गृहत्वामी होने का प्रमाण न था ? पर आज उसे ज्ञात हुआ कि यह केवल अज्ञा थी, उसके स्वामित्व का प्रमाण नहीं। क्या इस अज्ञा के बदले वह अपना अधिकार छोड़ सकता था ? कदापि नहीं। जब तक जिस घर में राज्य किया, उसी घर में पराधीन बनकर बह नहीं रह सकता। उसको अज्ञा की चाह नहीं, सेवा की भूख नहीं। उसे अधिकार चाहिए। वह इस घर पर दूसरों का अधिकार नहीं देख सकता। मन्दिर का पुजारी बनकर बह नहीं रह सकता।

न-जाने कितनी रात दाकी थी। सुजान ने उठकर गँडाते से चैलों का चारा काटना शुरू किया। सारा गाव सोता था, पर सुजान करदी काट रहे थे। इनना भन उन्होंने अपने जीवन में कभी न किया था। जब से उन्होंने क म करना छोड़ा था, दर-दर चारे के लिये हाय-हाय पड़ी रहती थी। शकर भी क'पना था भोला भी काटना था पर चारा पूरा न पड़ता था 'य न र' इन लौंडो को दिख दगा कि चारा कैसे काटना च'ता' बन न भन कटिया का पहाड़ खड़ा हो गया। 'घोर दुकहे' 'कनन' म'गेन' 'सुडौल' थे, मानो सांचे में टांके 'ए ह'

मुँह खँधरे बुलायी उठी तो कटिया का ट'रा' द'ख'र' 'र' गई। बोली 'क्या भोला आज रात भर काटया' हाँ क'प'न' रह गया ? कितना बड़ा कि देठा जी न क'प'न' है पर म न न ही



साथ रात-दिन काम करने को तैयार हैं।

अन्य कृषकों की भाँति भोला अभी कमर सीधी कर रहा था कि सुजान ने फिर हल उठाया और खेत की ओर चले। दोनों बैल उमंग से भरे दौड़े चले जाते थे, मानो उन्हें स्वयं खेत में पहुँचने की जल्दी थी।

भोला ने मड़ैया में लेटे-लेटे पिता को हल लिए जाते देखा, पर उठ न सका। उसकी हिम्मत छूट गई। उसने कभी इतना परिश्रम न किया था। उसे वनी बनाई गिरिस्ती मिल गई थी। उसे ज्यो-त्यों चला रहा था। इन दामो वह घर का स्वामी बनने का इच्छुक न था। जवान आदमी को बीस धंधे होते हैं। हँसने बोलने के लिये, गाने-बजाने के लिये, उसे कुछ समय चाहिए, पड़ोस के गाँव में दगल हो रहा है। जवान आदमी कैसे अपने को वहाँ जाने से रोकगा? किमी गाँव में बरात आई है, नाच-गाना हो रहा है। जवान आदमी क्यों उसके आनंद से वंचित रह सकता है? वृद्धजनों के लिये ये बाधाएँ नहीं। उन्हें न नाच-गाने से मतलब, न खेन-तमाशे से गरज, केवल अपने काम से काम है।

बुलाकी ने कहा—भोला, तुम्हारे दादा हल लेकर गए।

भोला—जाने दो अम्मा, मुझसे तो यह नहीं हो सकता।

५

सुजान-भगत क इस नवीन उत्साह पर गाँव में टीकाएँ हुईं। निकल गई सारी भगती। बना हुआ था। माया में फँसा हुआ है।

दोपहर हुआ। सभी किसानों ने हल छोड़ दिए। पर सुजान-भगत अपने काम में मग्न हैं। भोला थक गया है। उसकी बार-बार इच्छा होती है कि बैलों को खोल दे। मगर डर के मारे कुछ कह नहीं सकता। उसको आश्चर्य हो रहा है कि दादा कैसे इतनी मेहनत कर रहे हैं।

आखिर डरते-डरते बोला—दादा अब तो दोपहर हो गयी। हल खोल दे न ?

सुजान—हाँ खोल दो। तुम बैलों को लेकर चलो मैं ढाँड़ फेंक कर आता हूँ।

भोला—मैं संभा को फेंक दूँगा।

सुजान—तुम क्या फेंक दोगे। देखते नहीं हो, खेत कटोरे की तरह गहरा हो गया है। अभी तो बीच में पानी जम जाता है। इसी गोड़ूँ के खेत में बीस मन का बीघा होता था। तुम लोगों ने इसका सत्यानास कर दिया।

बैल खोल दिए गए। भोला बैलों को लेकर घर चला, पर सुजान ढाँड़ फेंकते रहे। आध घंटे के बाद ढाँड़ फेंक कर वह घर आए। मगर धरून का नाम न था। नहा-ग्यावर आगम करने व घदले उन्होंने बैलों को सुहलाना शुरू किया। उत्तरी पीठ पर हाथ फेरा, उनके पैर मले, पूँछ सुहलाई। बैलों की पूँछ खींची थी। सुजान की गोद में गिर खड़े उन्हें पसधनीय सुगंध मिल रहा था। बहुत दिनों के बाद आज उन्हें यह आनन्द प्राप्त हुआ था। उत्तरी आँखों में कलमता भरी हुई थी। मानों दे वर से म. इस दुनार

भगत—नहीं, तुमसे जितना उठ सकें, उठा लो।

भिन्नक के पास एक चादर थी। उसने कोई दम सेर अनाज उसमें भरा और उठाने लगा। संकोच के मारे और अधिक भरने का उसे साहस न हुआ।

भगत उसके मन का भाव समझ कर अश्वामन देते हुए बोले—बस ! इतना तो एक बच्चा उठा ले जायगा।

भिन्नक ने भोला की और संदिग्ध नेत्रों से देखकर कहा—मेरे लिये इतना बहुत है।

भगत—नहीं, तुम सकुचते हो। अभी और भरो।

भिन्नक ने एक पंसेरी अनाज आर भरा और फिर भोला की ओर सशंक दृष्टि से देखने लगा।

भगत उसकी ओर क्या देखते हो बाबा जी, मैं जो कहता हूँ, वह करो। तुमसे जितना उठाया जा सके, उठा लो।

भिन्नक डर रहा था कि कहीं उसने अनाज भर लिया और भोला ने गठरी न उठान दी, ना कितनी भद्दा होगी। और भिन्नको वो हँसने का अवसर मिल जायगा, सब यही कहेंगे कि भिन्नक जितना लोभी है। उसे और अनाज भरने की हिम्मत न पड़ी।

तब सुजान भगत ने चादर लेकर उसमें अनाज भरा और गठरी बाँधकर बोले—इसे उठा ले जाओ।

भिन्नक—बाबा, इतना तो मुझसे उठ न सकेगा।

भगत—अरे ! इतना भी न उठ सकेगा ! बहुत होगा तो

आदमी काहे को है, भूत है ।

मगर भगत जी के द्वार पर अब फिर साधु-संत आसन जमाए देखे जाते हैं । उनका आदर-सम्मान होता है । अब के उसकी खेती ने सोना उगल दिया है । बखारी में अनाज रखने को जगह नहीं मिलती । जिस खेत में पाँच मन मुरिकल से होता था, उसी खेत में अब की बार दस मन की उपज हुई है ।

चैत का महीना था । खलिहानों में सतयुग का राज था । जगह-जगह अनाज के ढेर लगे हुए थे । यही समय है, जब कृषकों को भी थोड़ी देर के लिये अपना जीवन सफल मालूम होता है; जब गर्व से उनका हृदय उछलने लगता है । सुजान भगत टोकरों में अनाज भर-भर कर देते थे और दोनों लड़के टोकरे लेकर घर में अनाज रख आते थे । कितने ही भाट और भिलुक भगत जी को घेरे हुए थे । उनमें वह भिलुक भी था, जो आज से आठ महीने पहले भगत के द्वार से निराश होकर लौट गया था ।

सहसा भगत ने उस भिलुक से पूछा—क्यों बूढ़ा, आज कहाँ-कहाँ चक्कर लगा आए ?

भिलुक—अभी तो कहीं नहीं गया भगत जी, पहले तुम्हारे ही पास आया हूँ ।

भगत—अच्छा, तुम्हारे सामने यह ढेर है । इसमें से जितना अनाज उठा कर ले जा सको, ले जाओ ।

भिलुक ने लुब्ध नेत्रों से ढेर को देखकर कहा—जि-  
अपने हाथ से उठाकर दे दोगे, उतना ही लूँगा ।

# विश्व साहित्य ग्रन्थमाला के कुछ

## प्रकाशन—

### कहानी संग्रह—

संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	२)
चरगागाह ( तुर्गेनेव )	१)
पाप ( चैन्व )	१)
विवाह की कहानियाँ ( हादों )	१)
वर्मायतनामा ( मोषानां )	१)
अभावस ( चन्द्रगुप्त विद्यालंकार )	२॥)
भय का राज्य ( चन्द्रगुप्त विद्यालंकार )	१)
नई कहानियाँ ( जैनेन्द्रकुमार )	२)
प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	१॥=)

### नाटक—

गंगा प्रताप ( द्विजेन्द्रलालराय )	१॥=)
मिर्ज़ा विजय ( . )	१॥)
अशोक ( चन्द्रगुप्त विद्यालंकार )	॥=)
रंवा	१)
वीर पेशवा ( मन्तराम )	१॥)
कुन्दमाला दिग्गज )	१)

### कविता —

अन्नवेदना ( पुण्याधेवती )	१)
निर्गोध ( रामकुमार वर्मा )	१)
अन्वना ( मोहनलाल मङ्गवी )	१॥)

साहित्य भवन, हम्पगाल रोड, लार्डो ।



